ऊष्ण मरूस्थलीय तंत्र में ऊष्ण शुष्क और अर्द्धशुष्क जीवोम शामिल हैं। ऊष्ण कटिबंधीय मरूस्थलीय जीवोम या पारिस्थितिक तंत्र दोनों गोलार्द्धों में 15° से 30° अक्षांशों के बीच उत्तरी अफ्रीका के सहारा, पश्चिमी एशिया USA के एरिजोना, द० अफ्रीका के कालाहारी, दक्षिणी अमेरिका के अटाकामा और मध्यवर्ती पश्चिमी आस्ट्रेलिया में विस्तृत है। विश्व के अधिकांश मरूस्थल कर्क एवं मकर रेखाओं के पास स्थित हैं, जहाँ वायुमण्डल की शुष्क हवा नीचे उतरती है तथा स्थलीय वर्षा के लिए कोई प्राकृतिक सुविधा नही है। अत: इन भागों में उच्च तापमान, आर्द्रता की कमी और दैनिक तापांतर सबसे अधिक होता है। ऊष्ण-शुष्क जलवायु के कारण यहाँ का स्थल वनस्पतिविहीन होता है। जहाँ कहीं कुछ उपयुक्त परिस्थिति उपलब्ध है वहाँ मरूद्भिद् (Xerophytes) वर्ग की वनस्पतियाँ अधिक मिलती है, जिनकी जड़े लंबी, पत्तियाँ मोटी व कड़ी या काँटेदार व नुकीली होती हैं। नागफनी, कँटीली झाड़ियाँ और मोटे पत्तों की घासे तथा वबूल वर्ग के छोटे वृक्ष, खजूद आदि यहाँ की मुख्य वनस्पतियाँ हैं। नखलिस्तानों (Oasis) में पानी की उपस्थिति के कारण अधिक वनस्पति पाई जाति है। ऊँट यहाँ का सर्वप्रमुख जानवर है जिसे 'रेगिस्तान का जहाज' कहा जाता है। यह एक स्ताह तक बिना पानी पिए रेगिस्तान में आराम से चल सकता है। इसके अलावा कुछ शाकाहारी तथा मांसाहारी जीव व कीड़े-मकोड़े, रेंगने वाले जीव भी यहाँ पाए जाते हैं मानव बसाव काफी कम होता है।

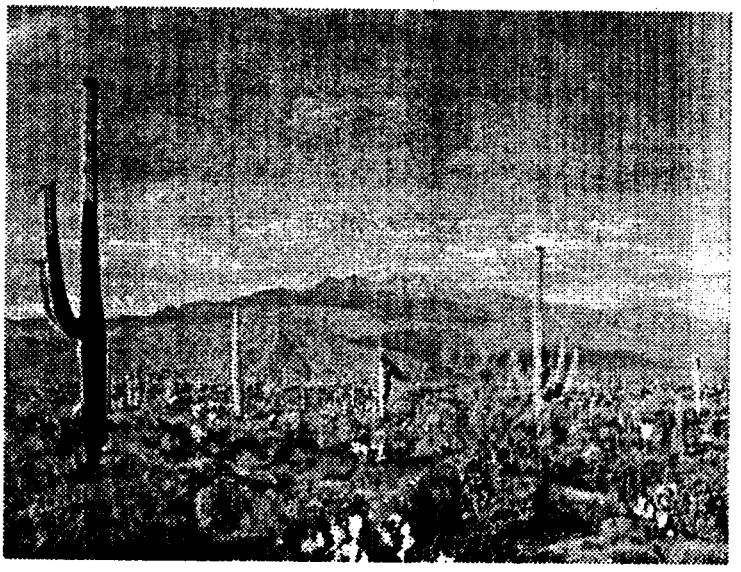

चित्र-9 : मरुस्थलीय पारिस्थितिक तंत्र

मरूस्थलों के छोरों पर जहां वर्षा कुछ अधिक होती है, वहाँ घास और छोटे-छोटे पेड़ उगते हैं। उसे अर्द्धशुष्क क्षेत्र कहा जाता है। यह वृक्ष-बहुत झाड़ियों (Woody shrubs) तथा घासों वाला क्षेत्र होता है जो मध्य-अक्षांशीय अर्द्धशुष्क जलवायु को प्रदर्शित करता है। इनका सम्बद्ध आवरण (Continuous Cover) नही होता है, अपितु बीच-बीच में धरातल तथा मिट्टियाँ वनस्पति विहीन होती है। यहाँ जैवभार अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है। यहाँ पशुपालन में संलग्न अनेक आदिवासियों के मानव वर्ग पाए जाते हैं।

शीतोष्ण शुष्क जीवोम मध्य-अक्षांशीय शुष्क प्रदेश होते हैं जहाँ बिखरी झाड़ियाँ पाई जाती हैं। ऊष्ण-शुष्क

जीवोम की अपेक्षा यहां मृदा जल का अभाव कम होता है, क्योंकि शीतकाल में यहां वाष्पीकरण अपेक्षाकृत कम होता है। **शीत मरूस्थलीय तंत्र** ध्रुवीय जलवायु वाला प्रदेश है जहां वर्षभर तापमान कम रहता है तथा धरातल हिमीकृत (Frozen) अवस्था में रहता है। यह आर्कटिक टुण्ड्रा जीवोम है। इस तंत्र में अल्पाइन पर्वतीय टुण्ड्रा जीवोम भी सम्मिलित है जो उच्च पर्वतों पर वृक्ष रेखा (tree line) के ऊपर होता है। यहां घासें, लाइकेन, मॉस तथा पुष्पी शाकीय झाड़ियाँ (Flowering herbs) पाई जाती हैं।

(ङ) द्वीपीय पारिस्थितिक तंत्र (Island Ecosysem)—इसके अंतर्गत सागरों तथा महासागरों से घिरे हुए छोटे-बड़े द्वीपसमूह सम्मिलित हैं। प्रशांत महासागर, हिन्द महासागर, अटलांटिक महासागर, आर्कटिक एवं अंटार्कटिक

चित्र-10 : द्वीपीय पारिस्थितिक तंत्र

महासागर में अनेक द्वीप समूह हैं जहाँ यह पारिस्थितिक तंत्र पाया जाता है। ऊष्ण कटिबंध में स्थित द्वीप समूह में सदाबहार वन पाए जाते हैं। शीत कटिबंध में स्थित द्वीपसमूह ज्यादातर वीरान हैं और जो आबाद हैं वहाँ घासें, लाइकेन, झाड़ियाँ आदि पाई जाती है।

(च) पठारी प्रदेशीय पारिस्थितिक तंत्र (Plateau Region Ecosystem)— इसके अंतर्गत पठारी प्रदेशीय पारिस्थितिक तंत्र सम्मिलित हैं। ये पठारी प्रदेश खनिज-संसाधनों से परिपूर्ण प्रदेश हैं। इन प्रदेशों की वनस्पतियाँ यहाँ पाई जानेवाली जलवायु एवं मृदा के अनुरूप होती हैं।

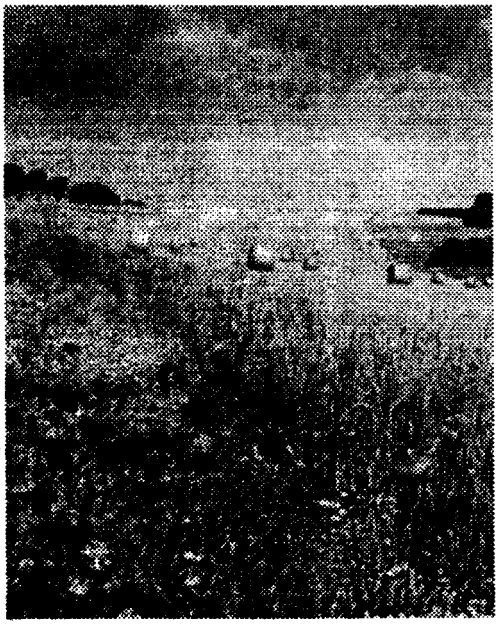

चित्र-11 : पठारी प्रदेशीय प्रादेशिक तंत्र

(छ) पर्वतीय प्रदेशीय पारिस्थितिक तंत्र (Mountain Region Ecosystem)— पर्वतीय वन पारिस्थितिक तंत्र की उपस्थिति पर्वतों की स्थिति और उनकी ऊँचाई से जुड़ी हुई है। ये पर्वत ऊष्ण कटिबन्ध से लेकर समशीतोष्ण कटिबन्ध तक स्थित हैं। साथ ही इनकी ऊँचाई से तापमान में ह्रास पाया जाता है। फलस्वरूप पर्वतों का जैवभार अलग-अलग प्रकार का पाया जाता है। पर्वतों की जीवोम उर्ध्वाधर प्रतिरूप प्रदर्शित करता है। जैसे, हिमालय के निचले भाग में ऊष्ण-आर्द्र वन जीवोम का प्राधान्य है जो 1500 मीटर तक पाया जाता है। यहाँ सदाबहार से लेकर पतझड़ी वन तक पाए जाते हैं। हाथी से लेकर बंदर तक छोटे जीव विचरण करते हैं। 1500 से 4000 मीटर के बीच समशीतोष्ण जलवायु की प्रधानता के कारण कोणधारी वन पाए जाते हैं–जहाँ छोटे आकार के जीवों की संख्या भी कम पाई जाती है। 5000 मीटर तक छोटे कोणधारी वृक्ष और अल्पाइन घासों की प्रधानता है, जहाँ केवल हल्के शरीर वाले जीव ही पाए जाते हैं। 5000 मीटर से अधिक ऊँचाई पर टुण्ड्रा सदृश जलवायु के क्षेत्र में घासे, मॉस, फर्न आदि ही पाए जाते हैं। इन पर्वतों पर वर्षा के वितरण का भी प्रभाव वन जीवोम पर देखा जा सकता है। इसी प्रकार सूर्य सम्मुत्व ढाल और विमुख ढाल के जीवोम में भी अंतर मिलता है। सूर्य सम्मुख ढाल पर वानस्पतिक आवरण एवं मानव-बसाव दोनों अधिक पाया जाता है।

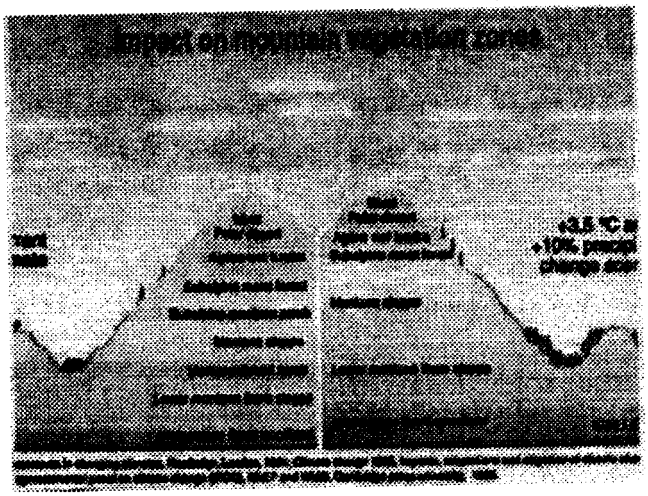

चित्र-12 : पर्वत प्रदेशीय पारिस्थितिक तंत्र

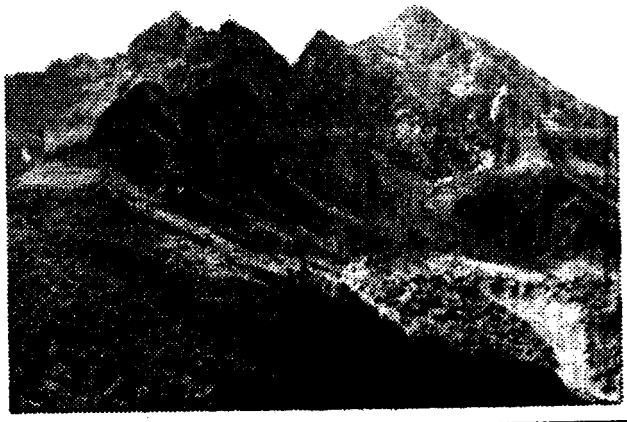

(ii) जलीय पारिस्थितिक तंत्र (Aquatic Ecosysem)—जलीय पारिस्थितिक तंत्र के अंतर्गत लवणता, ताप, लहरें, ज्वार-भाटा, जल की दशा आदि प्रमुख पारिस्थितिकीय कारक हैं, जो जलीय पारिस्थितिक तंत्र को नियंत्रित करते हैं। लवणीयता अर्थाज् जल के मीठेपन एवं खारेपन के आधार पर जलीय पारिस्थितिक तंत्र को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(क) मीठा अर्थात् ताजा जल पारिस्थितिक तंत्र (Fresh Water Ecosystem)— इसके अंतर्गत ताजा अर्थात् मीठा जल क्षेत्र आता है। ताजे जल को भी प्रवाह के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जाता है–

(a) स्थिर जलीय तंत्र (Standing Water)— इसके अंतर्गत धरातल पर स्थित तालाब, झील, दलदल, कुआँ आदि पारिस्थितिक तंत्र सम्मिलित हैं।

(b) प्रवाहित (बहता हुआ) जलीय तंत्र (Running Water Ecosystem)— इसके अंतर्गत नदियाँ, धारा, सोता, झरना, सरिता आदि पारिस्थितिक तंत्र सम्मिलित हैं।

मीठे जल पारिस्थितिक तंत्र में प्रायः बहुत ही तेजी से परिवर्तन होता है। जैसे झीलों, तालाबों, कुओं आदि में तेजी से मिट्टी के जमाव के तथा जल ह्रास के कारण, दलदली भूमि शुष्क भूमि में परिवर्त्तित हो जाती है तथा नदियों में गाद भरने एवं जल सूखने के कारण इनके पारिस्थितिक तंत्र में परिवर्तन होने लगता है।

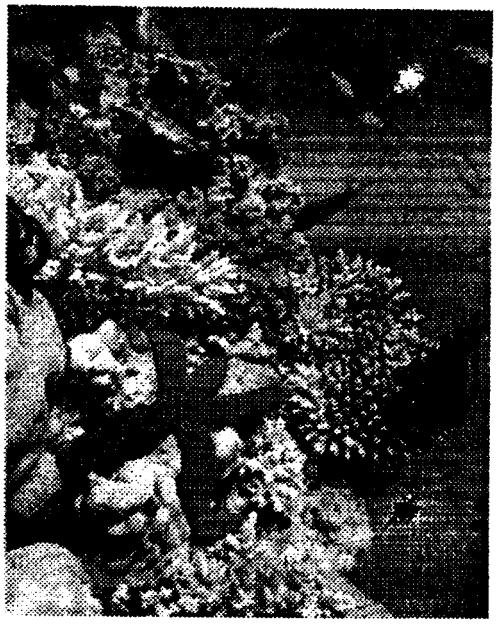

चित्र-13 : जलीय पारिस्थितिक तंत्र

(ख) खारा जल अर्थात् समुद्री जलीय पारिस्थितिक तंत्र (Saline Water or Marine Ecosystem)— संपूर्ण विश्व के लगभग 71% भाग पर समुद्री पारिस्थितिक तंत्र है। यह महासागर, सागर, समुद्र तट, नदी मुहाना,

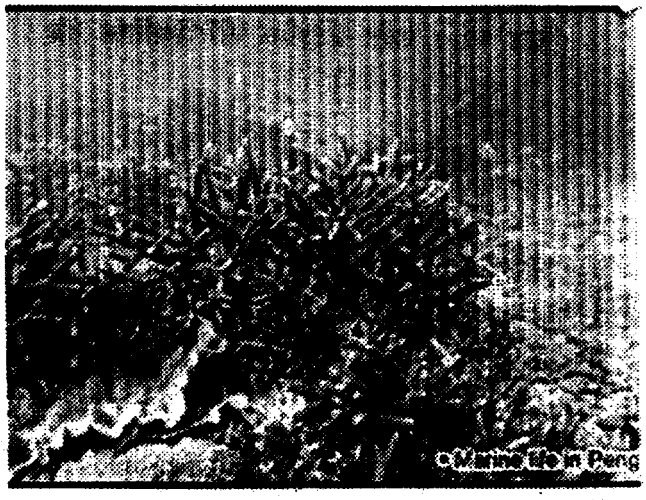

चित्र-14 : समुद्र जलीय पारिस्थितिक तंत्र

प्रवाल भित्ति आदि पारिस्थितिक तंत्रों में विभाजित है। जलीय पारिस्थितिक तंत्रों में कोई भौगोलिक अवरोध नहीं होते हैं, बल्कि सभी-समुद्री पारिस्थितिक तंत्र एक-दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। जल विस्तार, जल का तापमान, लवणता, गतिशीलता आदि के कारण सागरीय जल में विविध प्रकार की वनस्पतियाँ एवं जीव-जंतु विकसित होते हैं। यहाँ जल में पलनेवाले जीवों (वनस्पति एवं जलचर) की आहार श्रृंखला एवं जल की सुलभता के अनुसार जैवभार पाया जाता है। जल की ऊपरी परत में जिसे प्रकाशित मंडल कहते हैं; प्राथमिक उत्पादक (घासे, शैवाल आदि) प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहते हैं जिसके कारण इसी खण्ड में जल जीवों की प्रधानता पायी जाती है क्योंकि यहाँ सूर्य प्रकाश के साथ पोषक तत्त्वों, ऑक्सीजन गैस और कार्बनडाईऑक्साइड गैसे पर्याप्त मात्रा में सुलभ होती है। गहराई पर इनकी मात्रा कम होने पर वहाँ के जीवों का भोजन अवसाद है जो विविध स्त्रोतों से प्राप्त होता है। यहाँ शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनो वर्ग के जीव पाए जाते हैं। सागरीय पारिस्थतिक तंत्र या जीवोम को गहराई के अनुसार दो उपवर्गों में बाँटा जाता है। जैसे–

(a) पेलैजिक जीवोम (Pelagic Biome)— इसका निर्धारण जल की गहराई के अनुसार दो प्रधान और अनेक उप-खंडों में किया जाता है। जैसे–

(अ) प्रकाशित जीवोम (Photic Biome)— 200 मीटर तक विस्तृत इस क्षेत्र में सर्वाधिक जैव सामग्री (वनस्पति एवं जंतु) पायी जाती है। यहाँ प्लैंकटन, नेक्टन (बड़े जल जीव) मिलते हैं।

(ब) अप्रकाशित जीवोम (Aphotic or Dark Biome)— 200 मीटर से सागर की तली एक विस्तृत इस क्षेत्र में प्रकाश के अभाव तथा जल दबाव के कारण जीवन विकास के लिए सर्वथा प्रतिकूल है। यहाँ केवल कुछ विशिष्ट प्रकार के जीव ही पाए जाते हैं। इसमें 1000 मीटर तक का प्रखण्ड मध्य वेलैजि (Mesopelagic) 4000 मीटर तक का भाग गंभीर पेलैजिक (Bathy Pelagic) और 4000 से नीचे तल तक के भाग को अति गंभीर वेलैजिक मण्डल (Afysso Pelagic Zone) कहा जाता है। यहाँ बेन्थास (Benthos) मिलते हैं।

(b) नितलीय जीवोम (Benthic Biome)— सागर तल के जीवोम को नितलीय जीवोम कहते हैं जिसमें तटीय मण्डल (sub-littoral zone) और गंभीर तलीय मण्डल (Deep sea zone) को समाहित किया जाता है। अन्य शब्दों में निमग्न तट, गंभीर सागरीय मैदान और सागरीय गर्त्तो के जैव परिसर इसके प्रतीक हैं। सागरीय जीवोम में तापमान एवं पोषक तत्त्वों की उपस्थिति सर्वत्र समान नही है, जिसके कारण जीवों की आवासीय स्थिति में बदलाव आता रहता है। तापमान और पोषक तत्वों की उपस्थिति के आधार पर इसे **'गर्म जलीय जीवोम'** और **'शीत जलीय जीवोम'** में विभक्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सागरीय जीवों के समुदाय अनेक प्रकारों में विभक्त किए जाते हैं।

4.2.2 कृत्रिम (मानव निर्मित) पारिस्थितिक तंत्र (Man-Made Ecosystem)

कभी-कभी मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक वातावरण में परिवर्तन करके कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र का निर्माण करता है। इस प्रकार के कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र में बाँध, राष्ट्रीय उद्यान, कृत्रिम झील, नहर, ग्रीन हाउस, कृषि भूमि, चरागाह तथा अंतरिक्ष तंत्र सम्मिलित हैं।

4.3 निष्कर्ष (Summing-Up)

पारिस्थितिक तंत्र पारिस्थितिकी (Ecology) की वह आधारभूत इकाई है जिसमें जैविक और अजैविक वातावरण एक-दूसरे पर अपना प्रभाव डालते हुए पारस्परिक अनुक्रिया से ऊर्जा और रासायनिक पदार्थों के निरंतर प्रवाह से तंत्र की कार्यात्मक गतिशीलता बनाए रखते हैं। (ओडम के अनुसार)। कोई भी पारिस्थितिक तंत्र जैविक समुदाय एवं वातावरण के पारस्परिक क्रियाकलापों के कारण एक निश्चित जैवीय मंडल में संचालित होता है। वातावरण वास्तविक रूप में किसी क्षेत्र विशेष की उन प्राकृतिक दशाओं एवं तत्वों का संपूर्ण योग है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जैविक समुदाय को प्रभावित करते हैं। यहाँ वनस्पति एवं जीव-जंतु अपने पर्यावरण से पोषक शृंखला (Feedback loops) के द्वारा जुड़े रहते हैं। किसी भी समुदाय के पारिस्थितिक तंत्र कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि वह स्वावलंबी हो। यह स्थाई तथा अस्थाई दोनो प्रकार का हो सकता है। संपूर्ण धरती, जिसमे जैविक तथा अजैविक घटक निरंतर क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ करते रहते है भी एक वृहद पारिस्थितिक तंत्र है, जिसे 'जैव-मण्डल' (Biomse) या 'जीवोम' कहते हैं। वातावरण या निवास्य क्षेत्र के आधार पर विश्व में दो मुख्य पारिस्थितिक तंत्र हैं–(I) प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र और (II) कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र। प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र को पुनः दो भागों में विभाजित किया जाता है–(i) स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र, जिसके अंतर्गत वन पारिस्थितिक तंत्र, घास स्थल, मरूस्थलीय, टुण्ड्रा एवं हिमाच्छादित, द्विपीय, पठारी प्रदेशीय एवं पर्वतीय प्रदेशीय पारिस्थितिक तंत्र आते हैं। (ii) जलीय पारिस्थितिक तंत्र, जिसके अंतर्गत मीठा या ताजा जल और खारा जल या समुद्री जलीय पारिस्थितिक तंत्र आता है। इन सभी तंत्रों के वनस्पति एवं जीव-जंतुओं के प्रकार तथा जैव-भार में विभिन्नता पायी जाती है।

4.4 व्यवहृत शब्दावली (Keywords Used)

पारिस्थितिकी (Ecology)— पारिस्थितिकी वह विज्ञान है, जिसके अंतर्गत जीव और उनके वातावरण के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

पर्यावरण (Environment)— चारों ओर की उन बाहरी दशाओं का संपूर्ण योग, जिसके अंदर एक जीव अथवा समुदाय रहता है या कोई वस्तु उपस्थित रहती है।

जैविक समुदाय (Biotic Community)— इसके अंतर्गत जीवित पदार्थ जैसे वनस्पतियाँ, जीव-जंतु, मानव एवं सूक्ष्म जीव आते हैं।

अजैविक समुदाय (Abiotic Commnity)— इसके अंतर्गत अजैविक पदार्थ एवं तत्व जैसे जलवायु, स्थल, जल, मृदा, खनिज एवं चट्टान तथा भौगोलिक स्थिति आदि आते हैं।

जीवोम (Biome)— पादपों एवं प्राणियों का सम्मिलित रूप से पारिस्थितिकीय अध्ययन 'जीवोम' कहलाता है।

प्लैंकटन (Plankton)— इनका विकास प्रकाशित प्रखण्ड में होता है। ये जल में (200 मी० तक की गहराई तक) तैरने वाले सूक्ष्मजीवी पादप प्राणी हैं, जिन्हें प्राथमिक उत्पादक भी कहते हैं। जैसे-शैवाल ।

नेक्टन (Nekton)— बड़े आकार के तैरने वाले जीव जैसे मछलियाँ इस वर्ग में आती हैं जो ऊपरी व गहरे जल दोनों में पायी जाती है। जैसे-हेरिंग, कॉड, सील, कछुआ आदि ।

बेन्थास (Benthas)— जल में विकसित होनेवाले पादप और जंतु जो गहरे जल में पाए जाते हैं, 'बेन्थास' कहलाते हैं। ये तथीय निक्षेप में और तली के ऊपर जल में पाए जाते हैं। जैसे-Seaweeds, large algae, turtte grass, मसेल्स, ऑएस्टर आदि ।

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for Exercise)

4.5.1 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

1. पारिस्थितिक तंत्र किसे कहते हैं ?
2. विश्व में कितने प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र पाए जाते हैं ? संक्षेप में बताएँ ।
3. वन पारिस्थितिक तंत्र के बारे में बताएँ ।
4. सवाना घास पारिस्थितिक तंत्र का वर्णन करें ।
5. मरूस्थलीय पारिस्थितिक तंत्र की विशेषताओं का उल्लेख करें ।
6. जलीय पारिस्थितिक तंत्र का संक्षिप्त परिचय दें ।

4.5.2 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Questions)

1. पारिस्थितिक तंत्र की परिभाषा देते हुए इसके प्रमुख प्रकारों का वर्णन करें ।
2. स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र का विवेचन करें ।
3. स्थलीय एवं जलीय पारिस्थितिक तंत्र का तुलनात्मक वर्णन करें ।

4.6 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. पर्यावरण भूगोल – सविन्द्र सिंह
2. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण भूगोल – पी०एस० नेगी
3. पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी – राव एवं श्रीवास्तव
4. Essentials of Ecology and Environment Science
5. Ecology — A. G. Tansley

❖

पारिस्थितिकीय संतुलन एवं असंतुलन (Ecological Balance and Imbalance)

पाठ-संरचना (Lesson Structure)

5.0 उद्देश्य (Objective)

5.1 परिचय (Introduction)

5.2 पारिस्थितिकीय संतुलन (Ecological Balance)

5.3 पारिस्थितिकीय असंतुलन (Ecological Imbalance)

- 5.3.1 पारिस्थितिकीय असंतुलन के कारण (Causes of Ecological Imbalance)
- 5.3.2 पारिस्थितिकीय असंतुलन का वितरण (Distribution of Ecological Imbalance)
- 5.3.3 पारिस्थितिकीय असंतुलन का प्रभाव (Effect of Ecological Imbalance)
- 5.3.4 पारिस्थितिकीस असंतुलन को दूर करने के उपाय (Solution for Removing Ecological Imbalance)

5.4 निष्कर्ष (Summing-Up)

5.5 व्यवहृत शब्दावली (Keywords Used)

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for Exercise)

- 5.6.1 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)
- 5.6.2 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Questions)

5.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

5.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ का उद्देश्य विद्यार्थियों को पारिस्थितिकीय संतुलन एवं असंतुलन के संबंध में जानकारी प्रदान करनी है। इस पाठ को पढ़ने के उपरांत विद्यार्थी जान जाएँगे कि–

1. पर्यावरण संतुलन क्या है
2. पर्यावरण असंतुलन किसे कहते हैं
3. इस पारिस्थितिकीय असंतुलन का कारण, प्रभाव एवं वितरण क्या हैं
4. इसे दूर करने के उपाय क्या हैं

5.1 परिचय (Introduction)

किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र की प्राकृतिक अवस्था के विविध चक्रों एवं ऊर्जा प्रवाहों में पूर्वतया सामंजस्य (Co-ordination) स्थापित होता है जिसके फलस्वरूप इनमें एक गतिशील संतुलन स्थापित हो जाता है, जिसे 'पारिस्थितिकी संतुलन' कहते हैं। इस संतुलन या सामंजस्य में जब मानव द्वारा व्यवधान उत्पन्न होता है या पर्यावरण के किसी तत्व को उसकी सहन सीमा से अधिक क्षति पहुँचाती है तो इनमें (पारिस्थितिकी तंत्र की प्राकृतिक अवस्था

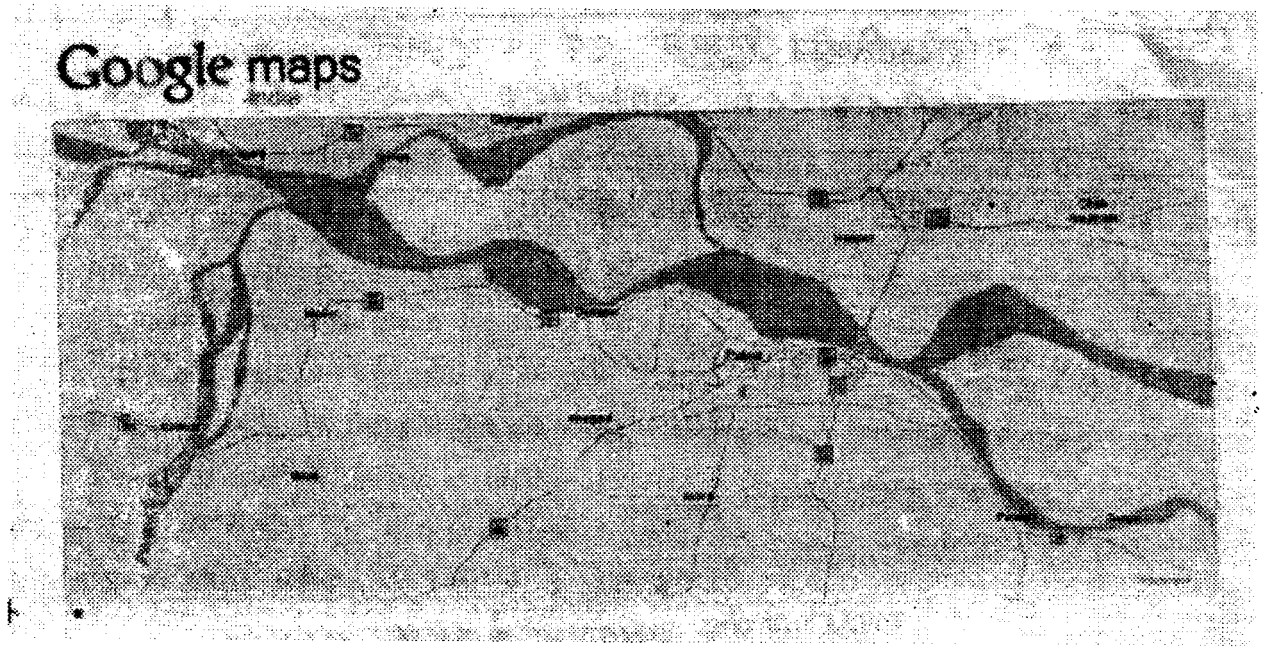

चित्र-1 : संतुलित पर्यावरण

के विविध चक्रों की ऊर्जा प्रवाह में) असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसे 'पारिस्थितिकी असंतुलन' कहते हैं।

पारिस्थितिकी असंतुलन विश्व की सबसे गंभीर समस्या बनती जा रही है। विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में इसकी विभीषिका और भी ज्यादा है, जिसका प्रमुख कारण वहाँ सामाजिक अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, पर्यावरण जागरूकता का अभाव, सुनियोजित विकास एवं शिक्षा का अभाव, वन-विनाश, मृदा अपरदन, तीव्र जनसंख्या वृद्धि, नगरीकरण और भौतिकवादी संस्कृति की प्रधानता है। वन-विनाश खनिजों के अतिदोहन एवं औद्योगिकीकरण ने प्रकृति के सामने उसके अस्तित्व एवं संतुलन की गंभीर समस्या उत्पन्न कर दी है, जिसके कारण पारिस्थितिकी का असंतुलन हो रहा है।

5.2 पारिस्थितिकीय संतुलन (Ecological Balance)

पर्यावरण का संतुलन जैव और अजैव तत्वों की संतुलित कार्य-प्रणाली का प्रतीक है, जबकि उसका असंतुलन विविध प्रकार के आवासीय संकटों का कारण है। प्राकृतिक पर्यावरण की संरचना भौतिक या अजैविक संघटकों (स्थल, जल, मृदा, वायु) एवं जैविक संघटकों, (पौधे, मानव सहित जंतु तथा सूक्ष्म जीव) द्वारा होती है। इस प्राकृतिक पर्यावरण तंत्र का कार्यान्वयन तथा नियंत्रण भौतिक एवं जैविक प्रक्रमों द्वारा होता है जो इस तरह कार्य करते हैं कि यदि भौतिक पर्यावरण के किसी क्षेत्र में किसी संघटक या संघटको में किसी खास समय में कोई परिवर्तन होता है तो उसकी अन्य परिवर्तनों द्वारा समुचित भरपाई हो जाती है। इसे अन्त निर्मित स्वत: नियामक क्रियाविधि (inbuilt self regulatory mechanism) कहते हैं, जिसके तहत यदि पर्यावरण में कोई परिवर्तन होता है तो दूसरे प्रकार के परिवर्तन द्वारा घटित परिवर्तन की क्षतिपूर्ति हो जाती हैं। इस तरह की स्वत: नियंत्रित होनेवाली क्रियाविधि कहते हैं। इस क्रियाविधि के कारण पारिस्थितिक तंत्र में सदा संतुलन बना रहता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जब पारिस्थितिकी में जैव एवं अैव संघटक संतुलित ढंग से परस्पर क्रिया करते है तथा जैवमंडल की गुणवतत्ता को बिना नुकसान पहुँचाए सतत् क्रियाशील रहते है: तो उसे व्यवस्थित या संतुलित पर्यावरण या पारिस्थितिकीय संतुलन कहते हैं। उदाहरण के लिए, कछुआ, घड़ियाल, मछली, अनेक सूक्ष्मजीवी बैक्टीरिया आदि जल में निहित प्रदूषक पदार्थ को खाकर जल को स्वच्छ रखते हैं। पौधे दूषित हवा को सोखकर ऑक्सीजन का निष्कासन कर वातावरण को स्वच्छ रखते हैं।

5.3 पारिस्थितिकीय असंतुलन (Ecological Imbalance)

मानवीय गतिविधियों द्वारा या किसी अन्य कारण से जब प्रकृति के किसी एक घटक की मात्रा में अनुपात से अधिक कमी अथवा वृद्धि होती है तो इसके परिणामस्वरूप प्रकृति के अन्य घटकों का संतुलन बिगड़ जाता है। यही पारिस्थितिकीय असंतुलन कहलाता है। प्रकृति में विशेष रूप से जैव-जगत में मनुष्य के आर्थिक क्रियाकलाप के फलस्वरूप अनवरत परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों में मुख्यतया वनाच्छादित क्षेत्रो का कम होना, भूमि तथा जल का अम्लीकरण होना, औद्योगिक अवशेष, जिनमें कुछ अत्यंत जहरीले पदार्थ भी मिले होते है का बढ़ना ; वायु,

समुद्रों तथा भूमि के प्रदूषण, परम्परागत ईंधन का बड़ी मात्रा में जलाया जाना, जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी के तापमान में निरन्तर वृद्धि और बदलाव आने की संभावना पैदा करनेवाले कार्बनडाइऑक्साइड के सांद्रण में वृद्धि होना मुख्य समस्याएँ हैं। इनके कई विनाशकारी प्रभाव भी दिखाई देने लगे हैं। इससे सभी जीवधारियों के अस्तित्व पर ही खतरा मँडराने लगा है।

5.3.1 पारिस्थितिकीय असंतुलन के कारण (Causes of Ecological Imbalance)

भूतल पर अन्य जीवधारियों की अपेक्षा मानव पर्यावरण का सबसे अधिक गतिशील कारक है। मानव की अपनी दैनिक क्रियाओं तथा विकास की प्रक्रियाओं द्वारा पर्यावरण में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। औद्योगिक क्रांति से उपजी भौतिकवादी संस्कृति ने मानव समाज को ऐसा पथ भ्रष्ट किया है कि वह स्वयं के साथ-साथ सभी जीवों के लिए भी संकट पैदा कर रहा है। इस पारिस्थितिकीय असंतुलन के लिए भौतिक एवं मानवीय दोनों ही प्रकार के कारक जैसे ज्वालमुखी क्रिया, भूकम्प, भू-स्खलन, प्राकृतिक दावानल, चक्रवात, बाढ़ एवं सूखा, झूमिंग कृषि, जैविक विनाश, जनसंख्या वृद्धि, गरीबी, अशिक्षा, संसाधनों का दुरूपयोग, औद्योगिकीकरण, नगरीकरण ऊर्जा के साधनों का अधिक उपयोग एवं उच्च तकनीकी विकास जिम्मेदार हैं। इनमें मानवीय कारण सर्वाधिक उत्तरदायी हैं। पारिस्थितिकीय असंतुलन के प्रमुख कारण निम्नलिखित है:-

(1) वन विनाश (Deforestation)— वन किसी भी राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति है, क्योंकि वनों से कई लाभ मिलते हैं। यह प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र का एक महत्वपूर्ण संघटक है तथा पर्यावरण की स्थिरता तथा पारिस्थितिकीय संतुलन उस क्षेत्र की वन संपदा की दशा पर आधारित होता है। आर्थिक लाभ एवं नगरीकरण के विस्तार ने वनों का काफी विनाश कर दिया है, जिसके कारण स्थानीय, प्रादेशिक एवं विश्व स्तरों पर अनेक पर्यावरणीय एं पारिस्थितिकीय समस्याएँ उत्पन्न हो गई है; जैसे:-मृदा अपरदन में वृद्धि, बाढ़ो की आवृति तथा विस्तार में वृद्धि, वर्षा में कमी के कारण सूखे की घटनाओं में वृद्धि जंतुओं व पादपों की कई जातियों का विलोपन, तूफान, ऑक्सीजन की कमी व कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि के कारण Global Warming आदि। पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से प्रत्येक देश के समस्त भौगोलिक क्षेत्रफल के कम-से-कम एक तिहाई भाग पर घना वनावरण होना चाहिए।

(2) भौतिकवादी संस्कृति की प्रधानता—पारिस्थितिकी असंतुलन का एक प्रमुख कारण मानव समाज की भौतिकवादी संस्कृति भी है जिसका मुख्य उद्देश्य प्रकृति के संसाधनो व अविवेकपूर्ण उपयोग एवं प्रकृति के प्रति शतुतापूर्ण व्यवहार कर अधिकाधिक लाभ कमाना है। आर्थिक निश्चयवादी दृष्टिकोण (economic Deterministic Viewpoint) के अनुसार मनुष्य का प्रकृति पर पूर्ण प्रभुत्व होता है तथा आर्थिक एवं औद्योगिक विस्तार एवं विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों का भरपूर उपयोग होना चाहिए। इस विचारधारा के कारण प्राकृतिक संसाधनो का पश्चिमी देशों एवं उनके उपनिवेशों में धुँआधार विदोहन होने से वर्तमान समय में अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ पैदा हो गई हैं जो पारिस्थितिकीय असंतुलन को दर्शाती हैं।

(3) उच्च तकनीकी विकास अर्थात् आधुनिक प्रौद्योगिकी—उच्च तकनीकी विकास या आधुनिक प्रौद्योगिकी मानव समाज के प्रत्येक अंग में प्रवेश कर चुकी है। इसकी सहायता से मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों का

अतिदोहन कर अपने वर्तमान जीवन को सुखमय और प्रगतिशील तो बना लिया है, किंतु इससे उत्पन्न दुष्प्रभाव ने उसके भविष्य पर ही प्रश्न-चिह्न लगा दिया है। इसके कारण भूकंपो में वृद्धि, प्रदूषण, ओजोन परत का क्षय, हरितगृह प्रभाव (greenhouse effects) में वृद्धि, पार्थिव तापन (Global Warming) जहरीले रसायनों के उत्पादन के कुप्रभाव, प्लास्टिक का दुष्प्रभाव, नाभिकीय अपशिष्ट पदार्थों के कुप्रभाव, मानव स्वास्थ्य हानि कई जातियों का विलोपन आदि हुए हैं। उच्चतकनीक का प्रतीक कम्प्यूटर मे ऐसे विषाणु भी है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इस तरह, मनुष्य ने आधुनिक प्रौद्योगिकी की सहायता से अपने भौतिक एवं आर्थिक जीवन स्तर को तो काफी ऊँचा कर लिया है, परंतु दूसरी तरफ अपने पूर्व विनाश की तैयारी भी कर ली है।

(4) मृदा अपरदन (Soil Erosion)— वन-विनाश तथा नगरों के विस्तार ने मृदा-अपरदन में काफी वृद्धि की है। इसके कारण उर्वर मिट्टियों का क्षय, उत्पादकता में ह्रास, नदियो में अवसाद भार में वृद्धि फलस्वरूप बाढ़ से अपार क्षति होती है। कृषि क्षेत्र में विस्तार, चारागाहों, उद्यानों के विस्तार आदि से मनुष्य के तो लाभ होता है, किंतु इससे मौलिक एवं प्राकृतिक वन पारिस्थितिक तंत्र के विनाश के साथ-साथ मृदा अपरदन में भी वृद्धि हुई है। फलस्वरूप मौसम तथा जलवायु संबंधी दशाओं के साथ पारिस्थितिकीय संतुलन में भी भारी परिवर्तन हुआ है। अधिकांश प्राकृतिक पौधे, जंतु तथा सूक्ष्म जीव नष्ट हो गए हैं, क्योंकि मृदा-अपरदन से इनके आवासों का भी विनाश हो जाता है। उपजाऊ भूमि पोषक तत्वों के बह जाने से बंजर हो जाती है।

(5) तीव्र जनसंख्या-वृद्धि (Rapid Population Growth)— पारिस्थितिकीय असंतुलन का सर्वप्रमुख कारण तीव्र जनसंख्या वृद्धि है जिसके कारण प्राकृतिक संसाधनों पर काफी दबाव पड़ा है, फलस्वरूप उनके अंधाधुंध दोहन ने यह स्थिति पैदा कर दी है। कृषि में विस्तार, नगरीकरण, औद्योगिकीकरण आदि बढ़ते मानव समुदाय के ही प्रतिफल है। विकासशील देशों में तो स्थिति और भी विकट है जहाँ तीव्र जनसंख्या वृद्धि हो रही है। लैटिन अमेरिका, अफ्रीका तथा दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी एशिया के अधिकांश विकासशील देशों मे उनके विदेशी व्यापार को संतुलित करने व अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का तेजी से विदोहन हो रहा है, जिस कारण प्राकृतिक संसाधनों को तेजी से विदोहन हो रहा है। फलस्वरूप विभिन्न पर्यावरणीय समस्याओं (बाढ़, सूखा, तूफान, भू-स्खलन आदि) का आविर्भाव हो रहा है।

(6) औद्योगिकीकरण (Industrialization)— विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास के कारण सर्वप्रथम इंगलैण्ड में औद्योगिकीकरण (1860 ई० में) प्रारंभ हुआ और शीघ्र ही इसका विस्तार पूरे विश्व में हो गया। वर्तमान में यह अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है। इसके कारण जहां आर्थिक, सामाजिक और वैज्ञानिक समृद्धि आई है, वही इसके कारण प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र गति से विदोहन और औद्योगिकी उत्पादन में वृद्धि ने पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। कच्चे पदार्थों की प्राप्ति के लिए वनों की छटाई के कारण वन क्षेत्रों में ह्रास, खनिज पदार्थों के खनन के कारण धरातल को उत्खन्न और इसके द्वारा वंजन भूमि में परिवर्तन, औद्योगिक विस्तार के कारण कृषि भूमि में ह्रास भूमिगत जल के अतयधिक निष्कासन के कारण भूमिगत जल के तल में गिरवावट, भूमिगत जल एवं खनिज तेल के निष्कासन के कारण धरातलीय सतह में अवतलन आदि हो रहा है। कारखानों से निष्कासित अपशिष्ट पदार्थ, प्रदूषित जल, जहरीली गैस, रासायनिक अवक्षेप, धूल, राख आदि प्रदूषण में वृद्धि करते जा रहे हैं।

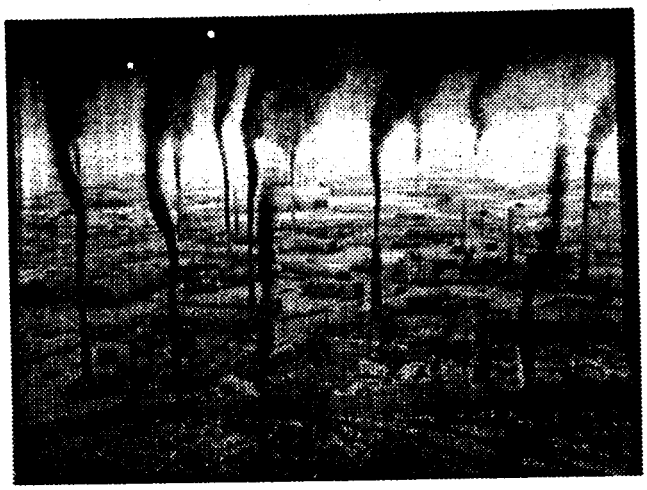

चित्र-2 : औद्योगिकीकरण के दुष्प्रभाव

औद्योगिकीकरण से उत्पन्न प्रभाव तुरंत नही दिखते, परन्तु उनके संचयी प्रभाव (Cummulative effects) इतने विकट एवं भयावह होते हैं कि उनसे प्राकृतिक पर्यावरण का मौलिक स्वरूप ही बदल जाता है। इससे उत्पन्न प्रभाव श्रृखलाबद्ध होते हैं जो मानव समाज के लिए घातक है। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से आहार श्रृंखला तथा मिट्टियों के रासायनिक एवं भौतिक गुणों में काफी परिवर्तन हो रहे हैं। सारा प्राकृतिक संतुलन अव्यवस्थित हो गया है।

(7) नगरीयकरण (Urbanization)— नगरीय केन्द्रो में जनसंख्या के लगातार बढ़ते सान्द्रण एवं औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप नगरो के निर्माण एवं पूर्वस्थित नगरो में विस्तार के कारण विकसित एवं विकासशील देशों में पर्यावरण प्रदूषण तथा असंतुलन की कई समस्याएँ उत्पन्न हो गई है। 1950 ई० के बाद से तीव्र गति से नगरीकरण हुआ है। वर्तमान समय में नगरो में अत्यधिक प्रदूषण के कारण ये मानव-बसाव के लिए प्राय: अनुपयुक्त हो चले हैं क्योंकि इनके पर्यावरण की गुणवत्ता में सारी गिरावट आयी है। अम्ल वर्षा, जाड़े के मौसम मे तापीय प्रतिलोभन के कारण जानलेवा नगरीय धूम कोहरे (Urban smogs) की उत्पत्ति, धरातलीय जल एवं भूमिगत जल का असंतुलन, नगरों के केन्द्र में **ऊष्ण द्वीप** (Hot island) तथा नगरों के ऊपर **प्रदूषण गुम्बद** (Pollution dove) के निर्माण के कारण स्थानीय एवं क्षेत्रीय विकिरण एवं ऊष्ण संतुलन में परिवर्तन, धरातलीय सतह में धँसाव, अपशिष्ट पदार्थो का दुष्प्रभाव आदि सभी नगरीकरण के दुष्प्रभाव है; जिनसे पारिस्थितिक असंतुलन हो रहा है। पश्चिमी देशों के नगरों से तो जनसंख्या का पलायन शुरू हो गया है।

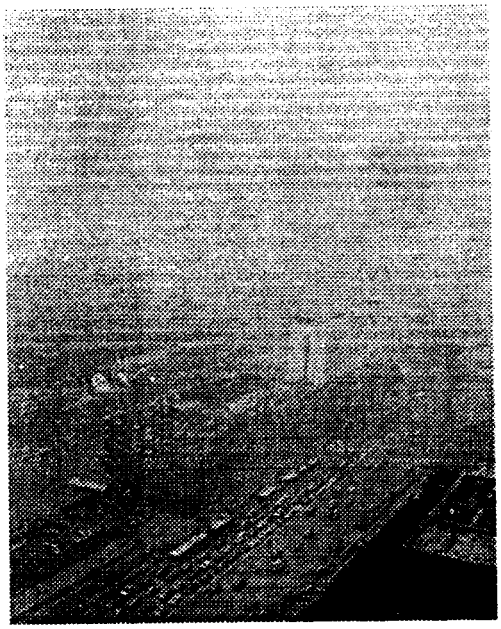

चित्र-3 : नगरीय धूम कोहरा

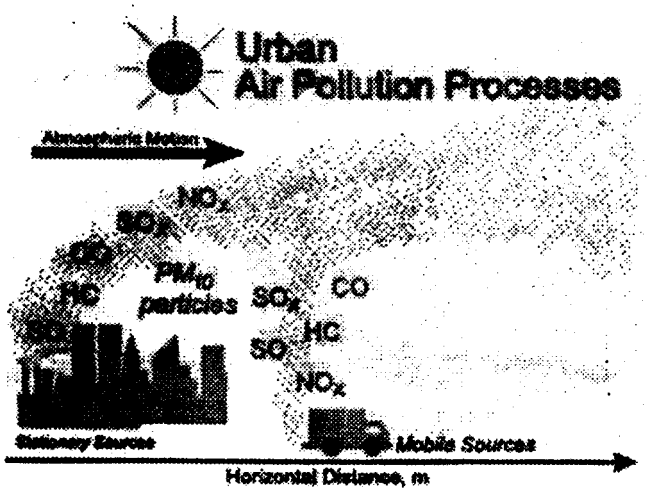

चित्र-4 : नगरीय वायु प्रदूषण प्रक्रम

5.3.2 पारिस्थितिक असन्तुलन का वितरण (Distribution of Ecological Imbalance)

भौगोलिक दृष्टि से पारिस्थितिकीय असंतुलन के स्थानिक वितरण को निम्नांकित प्रादेशिक स्तरों में विभाजित किया जा सकता है।

चित्र-5 : जल प्रदूषण (गंगा नदी : भारत)

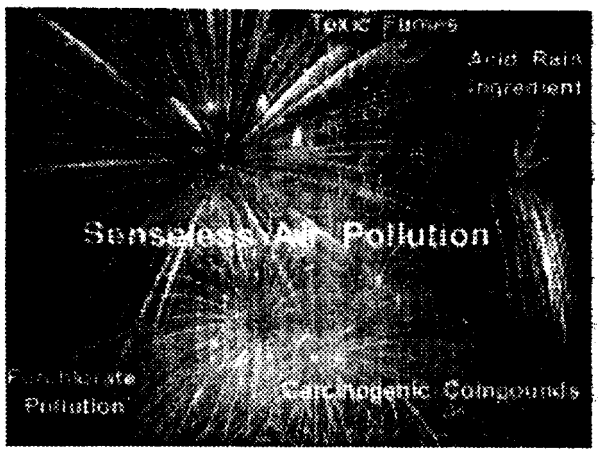

(i) **स्थानिक स्तर**–इसमें जल, ध्वनि, विकिरण प्रदूषण आदि को शामिल किया जाता है।

(ii) **प्रादेशिक स्तर**–इसके अंतर्गत वन-विनाश, भूमिगत जल, मृदा एवं औद्योगिकीकरण प्रदूषण आदि को पहचाना जा सकता है।

(iii) **नदी-बेसिन स्तर**–दामोदर बेसिन, गंगा बेसिन आदि।

(iv) **महाद्वीपीय स्तर**–इसमें क्षोभमण्डल तक जल, वायु, भूमि, प्रदूषण को शामिल किया जाता है।

(v) **विश्व स्तर**–इसके अंतर्गत ग्रीनहाउस प्रभाव तापमान बढ़ना, हिम का पिघलना एवं ओजोन परत क्षरण आदि को रखा जा सकता है।

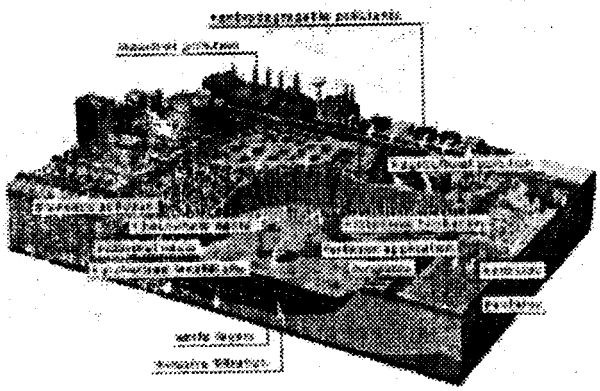

चित्र-6 : मृदा प्रदूषण

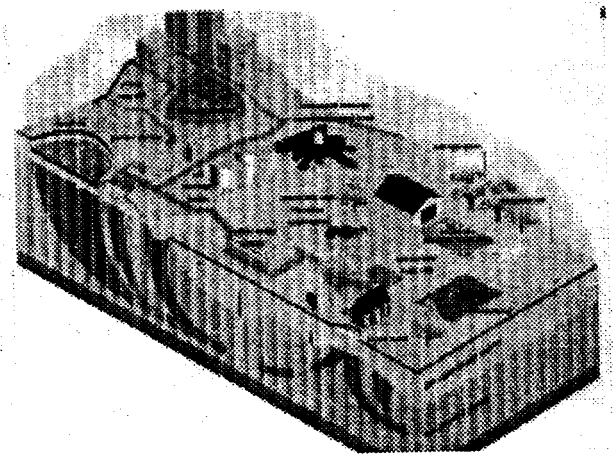

चित्र-7 : भूमिगत जल प्रदूषण

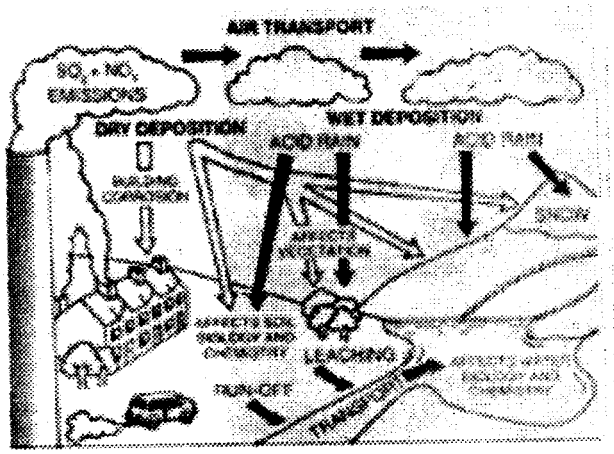

चित्र-8 : वायु प्रदूषण

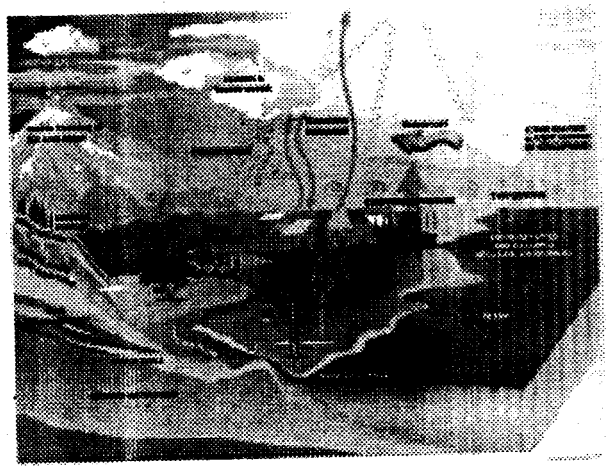

चित्र-9 : पर्यावरणीय प्रक्रम

5.3.3 पारिस्थितिकीय असंतुलन का प्रभाव (Effects of Ecological Imbalance)

पारिस्थितिकीय असंतुलन के निम्नांकित प्रभाव दृष्टिगत होते हैं:–

(A) स्थलमण्डलीय प्रभाव :

(i) भू-स्खलन की प्रक्रिया में तेजी

(ii) वन-विनाश के कारण बिहड़ीकरण की प्रक्रिया तीव्र होती है।

(iii) अम्ल वर्षा, अपरदन, लवणीकरण के कारण मृदा की गुणवत्ता में ह्रास होता है।

(B) वायुमण्डलीय प्रभाव :

(i) C.F.C. में वृद्धि से ओजोन में कमी ।

(ii) कार्बनडाईआक्साइड से पृथ्वी के तापमान में वृद्धि फलत: तापवृद्धि से हिम पिघलाव एवं समुद्रतल में वृद्धि एवं छोटे-छोटे द्वीपों का अस्तित्व समाप्त होने का संकट ।

(iii) सल्फर डाई-ऑक्साइड (SO_2) में वृद्धि से अम्लीय वर्षा होगी ।

(iv) वायु प्रदूषण, कोहरा एवं हवा में धूल की मात्रा में वृद्धि हुई है।

(C) जलमण्डल पर प्रभाव :

(i) औद्योगिक अपशिष्ट से नदी जल प्रदूषण ।

(ii) जहरीली वर्षा एवं प्रदूषित नदी जल के कारण भूमिगत जल प्रदूषण में वृद्धि ।

(iii) प्रदूषित नदी जल एवं जल परिवहन से समुद्री जल प्रदूषण में वृद्धि के फलस्वरूप समुद्री पारिस्थितिक तंत्र को संकट।

(iv) अंत: स्थलीय झीलों का सिकुड़ना एवं प्रदूषित होना ।

(D) जैव मण्डल का प्रभाव :

(i) कीटनाशी दवाओं, उर्वरकों के प्रयोग से जीवों की संख्या एवं प्रजातियों का ह्रास हो रहा है तथा इनके प्रयोग से मनुष्य के अंदर कैंसर, आँख, साँस एवं मस्तिष्क से सम्बन्धित बीमारियों में वृद्धि हुई है।

(ii) ध्रुवीय जीव-जंतु में यथा ह्वेल, पेंगुइन आदि पर दुष्प्रभाव ।

5.3.4 पारिस्थितिकीय असंतुलन को दूर करने के उपाय (Solution For Removing Ecological Imbalance)

पारिस्थितिकीय असंतुलन के उपर्युक्त दुष्प्रभावों को दूर करने के लिए यह आवश्क है कि पारिस्थितिकीय संतुलन को फिर से कायम किया जाए, जिसके लिए कुछ प्रमुख उपाय किए जा सकते हैं:–

(i) नए क्षेत्रों (परती भूमि) एवं वन कटाव क्षेत्रों में वृक्षारोपण किया जाना चाहिए।

(ii) प्रदूषण रहित वैकल्पिक ऊर्जा की खोज एवं प्रयोग को बढ़ावा दिया जाए ।

(iii) जैव-विविधता संरक्षण हेतु नेशनल पार्क एवं सेंचुरी तथा प्रोजेक्ट की स्थापना करना।

(iv) औद्योगिक एवं नगरीय कचरे का परिशोधन कर अन्यत्र प्रवाहित किया जाए।

(v) प्राकृतिक संसाधनो के अंधाधुंध विदोहन पर नियंत्रण करना।

(vi) रासायनिक खादों, कीटनाशी एवं शाकनाशी रसायनों के प्रयोग पर नियंत्रण किया जाए।

(vii) अवर्नालिका अपरदन से प्रवाहित कृषि भूमियों का सुधार तथा संरक्षण करना।

(viii) ओजोन को विनष्ट करनेवाले रसायनों CFC तथा हैलोजेन) के उत्पादन एवं उपभोग में भारी कमी करना होगा।

(ix) वायुमण्डल के हरितगृह प्रभाव को कम करने के लिए जीवाश्म ईंधनो के उपभोग में कमी तथा नियंत्रण किया जाए।

(x) नाभिकीय शस्त्रों के उत्पादन पर पूर्ण रोक लगनी चाहिए।

(xi) आम जनता को पर्यावरण के प्रति शिक्षित एवं जागरूक करना।

(xii) नई परियोजना निर्माण के समय ही पर्यावरण संबंधी पहलुओं पर विचार कर लिया जाए ताकि विकास परियोजना का पारिस्थिति की पर कोई प्रभाव न पड़े।

5.4 निष्कर्ष (Summing-UP)

किसी भी प्रदेश देश या क्षेत्र के भौतिक पर्यावरण के एकल या कई संघटकों में समुचित सामंजस्य पारिस्थितिकीय संतुलन और उनमें उत्पन्न अवनतावस्था या असंतुलन को 'पारिस्थितिकीय असंतुलन' कहते हैं। पर्यावरणीय असंतुलन के अंतर्गत मानव कार्यों तथा प्राकृतिक कारकों के द्वारा पर्यावरण के अधिकांश संघटकों तथा जीवों पर पड़नेवाले प्रतिकूल प्रभावों के कारण होनेवाले समस्त परिवर्तनों को इसके अंतर्गत सम्मिलित किया जाना चाहिए। तीव्र जनसंख्या वृद्धि वन-विनाश मृदा अपरदन, औद्योगिकीकरण, नगरीकरण आदि पारिस्थितिकीय असंतुलन के प्रमुख कारण है जिनका स्थलमंडल, जलमंडल, वायुमंडल तथा जीवमंडल सभी पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ता है। अत: मानव समाज एवं पर्यावरण के आस्तित्व के लिए विकास की गति को पर्यावरण के हित के अनुसार बनाए रखना होगा।

5.5 व्यवहृत शब्दावली (Key Words Used)

हरितगृह प्रभाव (Green House Effect)— पृथ्वी के वायुमंडल में कुछ विशेष गैसों की मात्रा इस सीमा तक बढ़ गई है कि धरती की ऊष्मा या गर्मी बाहर नही निकल पा रही है। इससे उत्पन्न प्रभाव को हरितगृत प्रभाव कहते हैं। इसको उत्पन्न करनेवाली गैसो में प्रमुख गैस कार्बनडाईऑक्साइड है।

पारिस्थितिकी (Ecology)— पारिस्थितिकी वह विज्ञान है जिसमें जीव-जंतुओं का आपस में तथा पर्यावरण

के साथ संबंधो का अध्ययन किया जाता है अर्थात् पारिस्थितिकी विज्ञान में जीवों एवं पेड़-पौधो के अंत: संबंधो के अध्ययन के साथ ही पर्यावरण का जीव-जंतुओं एवं पादपों पर क्या प्रभाव पड़ा इसका भी अध्ययन किया जाता है।

विश्व-व्यापी तापन (Global Warming)— तापीय ऊर्जा के वायुमण्डल में सान्द्रण से धरती के औसत तापमान में वृद्धि होती है, जिसे विश्व-व्यापी तापन कहते हैं।

लवणीकरण (Salination)— जल में लवणों की मात्रा में वृद्धि होना, जिससे फसलों के उत्पादन पर दुष्प्रभाव पड़ता है।

प्रदूषण (Pollution)— मनुष्य के क्रिया-कलापों से उत्पन्न अपशिष्ट उत्पादों के रूप में पदार्थो एवं ऊर्जा के विमोचन से प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले हानिकारक परिवर्तनो को 'प्रदूषण' कहते हैं।

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for Exercise)

5.6.1 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions) :

1. पारिस्थितिकीय संतुलन क्या है ? समझाएँ।
2. पारिस्थितिकीय असंतुलन का संक्षिप्त परिचय दें।
3. पारिस्थितिकीय असंतुलन के किन्हीं तीन प्रमुख कारणों को बताएँ।
4. वायुमण्डल पर पारिस्थितिकीय असंतुलन का क्या प्रभाव पड़ता है ?
5. पारिस्थितिकीय असंतुलन को दूर करने के उपाय क्या हैं ?

5.6.2 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Questions) :

1. पारिस्थितिकीय संतुलन और असंतुलन की विवेचना करें।
2. मानव किस प्रकार पारिस्थितिकीय असंतुलन के लिए उत्तरदायी है ? कारण सहित व्याख्या करें।
3. पारिस्थितिकीय असंतुलन के प्रभावों एवं उपायों को बताएँ।

5.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. पर्यावरण भूगोल – सविन्द्र सिंह
2. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण भूगोल – पी० एस० नेगी
3. पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी – राव एवं श्रीवास्तव
4. Essentials of Ecology and Environment Science — S.V.S. Rana
5. Ecology — A. G. Tansley

❖

जैव–भूगोल की प्रकृति, अध्यन क्षेत्र एवं महत्त्व (Nature Scale and Significance of Biogeography)

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

1.0 उद्देश्य (Objective)

1.1 परिचय (Introduction)

1.2 जैव–भूगोल की प्रकृति (Nature of Biogeography)

1.2.1 जैव–भूगोल का अध्ययन क्षेत्र (Scope of Bio-Geography)

1.2.2 जैव–भूगोल का महत्त्व (Significance of Bio-Geography)

1.2.3 जैव–भूगोल का अन्य विज्ञानों से संबंध (Relation of Bio-Geography to Other Sciences)

1.3 सारांश (Summing-Up)

1.4 परिभाषित शब्द (Key Word Used)

1.5 मॉडल प्रश्न (Model Questions)

1.6 संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1.0 उद्देश्य (Objective)

इस पाठ का उद्देश्य निम्नलिखित हैं जो इस प्रकार हैं–

- विद्यार्थियों को 'भूगोल की हाल में विकसित शाखा जैव–भूगोल क्या है? बताना है।
- जैव–भूगोल की प्रकृति (Nature) और विषय क्षेत्र (Scope) के बारे में जानकारी देनी है।
- इस विषय का महत्त्व (Significance) जो वर्तमान समय में विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय समस्याओं को सुलझाने में काफी कारगर विषम साबित हो रहा है के बारे जानकारी देनी है।

1.1 परिचय (Introduction)

जैव-भूगोल (Bio-geography) दो शब्दों जैव (Bio) एवं भूगोल (Geography) से मिलकर बना है। अतः हमें सर्वप्रथम इन दोनों शब्दों का ही अर्थ जानना आवश्यक है। जैव का अंग्रेजी पर्याय (Bio) है जो ग्रीक भाषा के शब्द वायोस (Bios) से बना है जिसका अर्थ है जीवन (Life) या जीव। इसी प्रकार भूगोल अर्थात् Geography भी दो शब्दों Geo = Earth (पृथ्वी) Graphy = Description) (वर्णन / विवरण) से बना है, जिसका सामान्य अर्थ पृथ्वी का वर्णन है।

इस प्रकार अब हम कह सकते हैं कि "जैव-भूगोल पृथ्वी पर जन्तुओं व वनस्पतियों के वितरण (Distribution) व उनके पारस्परिक प्रभाव का वैज्ञानिक अध्ययन ही है।" जैव-भूगोल भूतल पर स्थित जीवित वस्तुओं का अध्ययन है जिसका सम्बन्ध भूतल की घटनाओं से होता है। जैव-भूगोल जैविक वस्तुओं का अध्ययन है जिसका सम्बन्ध भूतल की घटनाओं से होता है। इन जैविक तत्त्वों के अन्तर्गत भौतिक कारक, जलवाभुविक स्थितियाँ एवं अन्य कारकों को सम्मिलित किया जाता है जो कि सम्मिलित रूप से भूतल पर प्रभाव डज़लते हैं। जैव-भूगोल (Bio-geography) जैव मण्डल (Biosphere) का अध्ययन है जिसके अन्तर्गत स्थल मण्डल (Lithosphere) के निवास क्षेत्र व वायुमण्डल (Atmosphere) एवं जलमण्डल (Hydrosphere) को भी शामिल किया जाता है। जैसे कि सभी जीवित तत्त्व एक निश्चित स्थान पर एक निश्चित वायुमण्डल एवं पर्यावरण में निवास करते हैं व अपने पर्यावरण के अनुसार ही वे प्रकृति के साथ अपने क्रियाकलाप भी करते हैं।

1.2 जैव-भूगोल की प्रकृति (Nature of Biogeography)

जैव-भूगोल (Bio-geography), भूगोल की हाल में विकसित शाखा है। इस विषय का उद्भव 1925 ई० से प्रारम्भ होता है, जब जैव-भूगोलविदों (Bio-geographers) ने पर्यावरण का मानव पर प्रभाव, प्राकृतिक वनस्पति से सम्बन्ध का अध्ययन प्रारम्भ किया। लेकिन ग्रीस वासी पर्यावरण व मानव जीवन के सम्बन्ध में पहले से जानते थे। इन्होंने मानवीय आवश्यकताओं व पर्यावरण के बारे में पुस्तकें भी लिखीं।

Albertus Magens (1193-1280) ने जन्तुओं के विषय में विशेष अध्ययन किया।

Hohen Stafen (1194-1250) ने इसी युग में एक किताब 'The Art of hunting Bios' नाम से लिखी जो कि पक्षियों के रहन-सहन उनके घोंसले बनाने के समय एवं स्थानान्तरण पर आधारित था।

Orto Brunfedus (1448-1535 A.D) ने पहली बार सक्रिय पेड़-पौधों के वितरण का उध्ययन किया।

Conrat (1516-65 A.D) जर्मन वैज्ञानिक था और उसने एक किताब 'Historia Animalium' लिखी जिसमें उन्होंने मुख्य रूप से जन्तुओं की विभिन्न जातियों का अध्ययन किया।

Peter Simon (1811-1871) जो जर्मन भूगोलवेत्ता था उन्होंने रूस में पाए जानेवाली स्टेपीज घास की जलवायु दशाओं का अध्ययन किया।

Alexender von Humbolt (1769-1859) ने अपने अध्ययन में यह बताया कि बनस्पति ही जलवायु दशाओं को प्रदर्शित करने का उपयुक्त उपागम है।

आधुनिक जैव-भूगोल का उदय 19वीं शताब्दी में डार्विन व वेलिस के समय से हुआ। ये जैव-भूगोलवेत्ता अपने वर्गीकरण में जन्तुओं के विकास को ज़्यादा महत्त्व देते थे। वेलिस (Belis) ने 1897 में जन्तुओं के वर्णन के अन्तर्गत संसार को छह जन्तु प्रदेशों में बाँटा।

विभिन्न भूगोलवेत्ताओं ने जैव-भूगोल (Bio-geography) की प्ररिभाषाएँ अपने-अपने ढ़ंग से से दी हैं, जो इस प्रकार हैं–

प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता डडले स्टाम्प **(Dudley Stamp)** के अनुसार–"जैव-भूगोल जीवित जन्तुओं के भौगोलिक वितरण का विज्ञान है जिसके अन्तर्गत जीव-जन्तु व वनस्पति दोनों ही सम्मिलित हैं।" ("Bio-geography is the science of the geographical distribution of living things, animals and vegetables.")

यद्यपि डडले स्टाम्प की यह परिभाषा जैव-भूगोल की जानकारी या उसके अध्ययन को तो स्पष्ट करती है, परन्तु यह परिभाषा पारिस्थितिक तथा पारिस्थितिकी तंत्र के सम्बन्ध में कोई भी विचार प्रस्तुत नहीं करती है।

प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता एच० आर० मिल (H. R. Mill) के अनुसार "जैव-भूगोल का उद्देश्य यह पता लगाना है कि विशेष प्रजातियाँ अपने विशेष क्षेत्र में क्यों पायी जाती है।" ("The purpose of Bio-geography is to trace out the reason why particular species occupy the region where they are now found").

एक अन्य स्थान पर उन्होंने यह भी कहा है कि–"जैव-भूगोल जीव-जन्तु व वनस्पति के विवरण का विज्ञान है।" ("Bio-geography is the science of the distribution of animals and plants").

परन्तु यथार्थ में हम इसे पूर्ण परिभाषा कह सकते हैं, क्योंकि यहाँ केवल भौगोलिक विभिन्नता का ही अध्ययन नहीं है, अपितु हम उसके भौगोलिक कारकों से सम्बन्ध का भी अध्ययन करते हैं।

एफ० जे० मोंकहाउस (F. J. Monkhouse) ने 'A Dictionary of Geography' में "जैव-भूगोल वनस्पति एवं जीवन-जन्तुओं के जीवन का भौगोलिक अध्ययन है।"

("The stady of geographical aspects of plants and animals life, especially in terms of reasoned distribution").

प्रसिद्ध मानव भूगोलवेत्ता फ्रांसीसी विद्वान **जीन ब्रूंस (Jeen Brunhes)** ने कहा है कि–"यह अब कोई वर्णन की सूची नहीं है, अपितु यह इतिहास है। यह अब केवल स्थान मात्र की गिनती नहीं रही है, अपितु यह एक व्यवस्थित क्रमबद्ध विषय है। इसका दोहरा उद्देश्य है। कार्यशील रूपों के पीछे प्रभाव को वर्गीकृत करना, उनको समझना व इन सभी तथ्यों का सम्मिलित प्रभाव क्या होगा यह निर्देशित करना है।" ("It is no longer an inventory, it is a history. It is no longer an enumeration, it is a system. It has double purpose of observing, classifying and explaining the direct effects of acting forces and the complete affects of those acting together").

रॉबिन्सन (Robinson) नामक भूगोलवेत्ता के अनुसार, "जैव-भूगोल धरातल पर पाये जानेवाले जीवित तत्त्वों के वितरण का अध्ययन है।"

डेविड (David) महोदय के शब्दों में "किसी स्थान पर होनेवाले कालिक परिवर्तन का अध्ययन जैव-भूगोल के अन्तर्गत किया जाता है।"

न्यू वेन (New Begn) महोदय के अनुसार–"जैव-भूगोल जैव मण्डल के जीवित तत्त्वों के वितरण एवं उनके पर्यावरण के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन है।"

इस प्रकार उपर्युक्त सभी परिभाषाओं के अध्ययन के पश्चात संक्षेप में कहा जा सकता है कि जैव-भूगोल वह विज्ञान है जिसके अन्तर्गत जीवित तत्त्वों के स्थानिक वितरण के मध्य समानता एवं असमानता का अध्ययन, स्थानिक वितरण को प्रभावित करनेवाले भौगोलिक कारक, प्राकृतिक व भूत्तात्त्विक कारक, जलवायवीक स्थिति, मृहा, वन, कृषि, जनसंख्या वितरण, मानवीय अभिकृतियाँ आदि का अध्ययन किया जाता है।

1.2.1 जैव-भूगोल का अध्ययन क्षेत्र (Scope of Bio-Geography)

यदि विस्तृत दृष्टिकोण से देखा जाये तो जैव-भूगोल (Bio-geography) पर्यावरण, जीव-जन्तु, पौधे एवं मानव आदि इन प्रमुख कारकों के मध्य पाये जानेवाले अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन करने का प्रयास करता है। जीवों का अध्ययन इसके अन्तर्गत सबसे महत्त्वपूर्ण है। वनस्पति, मनुष्य व पशु जीवों के अन्तर्गत ही आते हैं, जैव-भूगोल (Bio-geography) इन विविध प्रकार के जीवों के पृथ्वी व समुद्र में वितरण का अध्ययन करता है। इसके अध्ययन की इसकी अपनी विशेष परिपात्मक (Quantitatire), पर्यवेक्षणात्मक (Obbervatory), विश्लेषणात्मक और प्रयागात्मक आदि प्रणालियाँ हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि इन जीवों का भू-मण्डल पर वितरण मात्र का ही अध्ययन जैव-भूगोल में नहीं किया जाता है, अपितु साथ-साथ यह भी विश्लेषण करने का प्रयास किया जाता है कि किसी विशेष प्रकार के जीव व वनस्पतियाँ एक-दूसरे को कितना व किस प्रकार प्रभावित करती हैं। इस पारस्परिक प्रभाव का विश्लेषण और विवेचन ही जैव-भूगोल का सर्व प्रमुख उद्देश्य है। इस प्रकार संक्षेप में जैव-भूगोल में–

(i) जीवों का अध्ययन,

(ii) जीवों के भौगोलिक वितरण का अध्ययन एवं

(iii) जीवों के वितरण के कारण व प्रभाव का अध्ययन प्रमुख है।

1.2.2 जैव-भूगोल का महत्त्व (Significance of Bio-Geography)

सामान्य रूप से जैव-भूगोल (Bio-geography) जीव-मण्डल में पौधों एवं जन्तुओं (मनुष्य को छोड़कर) के वितरण, उनके जीवन-प्रारूपों (Life Paltterns) तथा उनके (पौधों एवं जन्तुओं के) वितरण में स्थानिक विभिन्नताओं के कारकों का अध्ययन करता है।

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि पारिस्थितिकीय परिदृष्टि के साथ (with ecological perspective) जैव-भूगोल मानव-पर्यावरण सम्बन्धों का सुचारू रूप से अध्ययन कर सकता है, पर्यावरणीय समस्याओं

का निर्धारण कर सकता है तथा प्राकृतिक एवं पारिस्थितिकीय संसाधनों के संरक्षण एवं प्रबन्धन के लिए आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से उपयुक्त पर्यावरण नियोजन का नियमन (Formulation) कर सकता है।

1.2.3 जैव-भूगोल का अन्य विज्ञानों से संबंध (Relation of Bio-Geography to Other Sciences)

जैव-भूगोल निश्चित रूप से ही जीवीय विज्ञानों (Biological Sciences) से गहन रूप से संबंधित है। वर्तमान में विशाल अथवा विस्तृत विषय का रूप ले चुका जैव-भूगोल, (Bio-geography), वनस्पति विज्ञान (Botany), जीव विज्ञान (Zoology), भूगर्म विज्ञान (Geology), जलवायु विज्ञान (Climatology), समुद्र विज्ञान (Oceanography), रसायन विज्ञान (Chemistry), Paleontology, Phyto Sociology, Environmental Science आदि से निकट रूप से सम्बन्धित है। जैव-भूगोल का मुख्य लक्ष्य उन भौगोलिक क्षेत्रों का अध्ययन करना है जहाँ कि वनस्पति व जीव-जन्तुओं में समानता या असमानता पायी जाती है व वाषपीय धरातलीय एवं पर्यावरणीय कारकों का अध्ययन है जो इस विवरण को प्रभावित करते हैं। यह भू-विज्ञान का भी अध्ययन है जो यह बताता है कि भूतकाल एवं वर्तमान काल में प्राकृतिक इतिहास कैसा था व वर्तमान काल में उसमें परिवर्त्तन आये हैं। जैव-भूगोल में निम्नांकित क्षेत्रों का अध्ययन किया जाता है–

(i) स्थानिक वितरण : विश्व को कई पादप व जन्तु प्रदेशों में बाँटा गया है।

(ii) पारिस्थितिक तंत्र का अध्ययन

(iii) जीवाश्म भूगोल का अध्ययन : जीवाश्म, पुरातन वनस्पति व जन्तुओं के विषय में जानकारी देते हैं।

(iv) पारिस्थितिकी का अध्ययन

(v) प्राकृतिक संसाधनों का अध्ययन

(vi) जैव मण्डल का अध्ययन

(vii) कारण-प्रभाव का अध्ययन

1.3 सारांश (Summing-up)

Blo-geography दो शब्दों से मिलकर बना है। Bio (जैव) ग्रीक भाषा के Bios से बना है जिसका अर्थ जीवन (Life) या जीव है। Geography शब्द भी दो शब्दों Geo (Earth) और Graphy = Description से बना है, जिसका सामान्य अर्थ पृथ्वी का वर्णन है।

सामान्य रूप से जैव-भूगोल जीव मण्डल में पौधों एवं जन्तुओं (मनुष्य को छोड़कर) के वितरण, उनके जीवन-प्रारूपों (Life Patterns) तथा उनके (पौधों एवं जन्तुओं के) वितरण में स्थानिक विभिन्नताओं के कारकों का अध्ययन करता है।

जैव-भूगोल (Bio-geography) का उद्भव 1925 ई० से प्रारम्भ होता है, जिसे विभिन्न भूगोलवेत्ताओं ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है–

डडले स्टाम्प (Dudley Stamp)—"जैव-भूगोल जीवित जन्तुओं के भौगोलिक वितरण का विज्ञान है जिसके अन्तर्गत जीव-जन्तु व वनस्पति दोनों ही सम्मिलित हैं।" ("Bio-geography is the science of the geograpical distribution of living things, animals and vegetables")।

एफ० जे० मोंकहाउस (F. J. Monkhouse) ने बताया कि–"जैव-भूगोल वनस्पति एवं जीव-जन्तुओं के जीवन का भौगोलिक अध्ययन है।"

प्रसिद्ध फ्रांसीसी मान्य भूगोलवेत्ता जीन ब्रूंस (Jean Brunhes) ने कहा है कि–"यह अब कोई वर्णन की सूची नहीं है, अपितु यह इतिहास है। यह अब केवल स्थान मात्र की गिनती नहीं रही है। अपितु यह व्यवस्थित क्रमबद्ध विषय है। इसका दोहरा उद्देश्य है। कार्यशील रूपों के पीछे प्रभाव को वर्गीकृत करना, उनको समझना व इन सभी तत्यों का सम्मिलित प्रभाव क्या होगा यह निर्देशित करना है।"

न्यूवेन (New Begn) ने कहा–"जैव-भूगोल जैव मण्डल के जीवित तत्त्वों के वितरण एवं उनके पर्यावरण के मध्य सम्बन्ध का उध्ययन है।"

इसके अलावा एच० आर० मिल, रॉबिन्सन, डेविड, आदि ने जैव-भूगोल को परिभाषित किया है।

जहाँ तक जैव-भूगोल के अध्ययन क्षेत्र का प्रश्न है तो इसके अन्तर्गत–(i) जीवों का अध्ययन (ii) जीवों के भौगोलिक वितरण का अध्ययन एवं (iii) जीवों के वितरण के कारण व प्रभाव का अध्ययन प्रमुख है।

जहाँ तक जैव-भूगोल की महत्ता का प्रश्न है तो यह मानव-पर्यावण सम्बन्धों का सुचारू रूप से अध्ययन कर सकता है, पर्यावरणी समस्याओं का निर्धारण कर सकता है तथा प्राकृतिक एवं पारिस्थितिकीय संसाधनों के संरक्षण और प्रबन्धन के लिए एक मार्ग दिखाता है जिससे नियोजन (Planning) का नियमन (Formulation) हो सकता है।

जैव-भूगोल (Bio-geography) जीवीय विज्ञानों (Biological Sciences) से सम्बन्धित है, जो वनस्पति विज्ञान (Botany), जीव-विज्ञान (Zoology), भूगर्भ विज्ञान (Geology), जलवायु विज्ञान (Climatology), (Oceanography) समुद्र विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान (Environmental Sciences) आदि से निकट रूप से सम्बधित है।

1.4 परिभाषित शब्द (Key Word Used)

(i) जैविक (Biotic) : पादप, जन्तुओं और सूक्ष्म जीव। (Micro-Organism).

(ii) अजैविक (Abiotic / Physical) : स्थल, जल तथा वायु।

(iii) पर्यावरण (Environmnet) : भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशाओं का योग जिसकी अनुभूति किसी प्राणी या प्राणियों को होती है। इसके अन्तर्गत जलवायु, मिट्टी, जल, प्रकाश वनस्पति, स्वप्रजाति एवं अन्य प्राणि जगत शामिल होते हैं।

(iv) जीव मण्डल / जैव मण्डल (Biosphere) : भूपर्पटी, वायुमण्डल तथा जलमण्डल का वह भाग जिसमें जीवित जीव (प्राणी एवं पादप) निवास करते हैं और उनकी पारस्परिक क्रिया होती है।

1.5 मॉडल प्रश्न (Model Questions)

(i) जैव-भूगोल को परिभाषित कीजिये। इसकी प्रकृति एवं अध्ययन क्षेत्र (Scope) का वर्णन करें।

(ii) जैव-भूगोल को परिभाषित करें एवं इसका क्या महत्त्व (Significance) है। इसे स्पष्ट करें।

(iii) जैव-भूगोल को परिभाषित करें तथा इसके अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध की चर्चा करें।

1.6 संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

जैव-भूगोल : एस० के० जैन

पर्यावरण भूगोल : सविन्द्र सिंह

पर्यावरण भूगोल : डॉ० गायत्री प्रसाद एवं डॉ० राजेश नौटियाल

❖

स्थलीय / धरातलीय पारिस्थितिक-तन्त्र में जैव-ऊर्जा चक्र (Bio-Energy Cycles in Terrestrial Ecosystem)

पाठ-संरचना (Lesson Structure)

2.0 उद्देश्य (Objective)

2.1 परिचय (Introduction)

2.2 धरातलीय पारिस्थितिक-तंत्र में जैव-ऊर्जा चक्र (Bio-Energy Cycles in Terrestrial Ecosystem)

2.2.1 पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow in the Ecosystem)

2.2.2 जलीय चक्र (Hydrological Cycle)

2.2.3 ऑक्सीजन चक्र (Oxygen Cycle)

2.3 सारांश (Summing-up)

2.4 मॉडल प्रश्न (Model Questions)

2.5 संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

2.0 उद्देश्य (Objective)

इस अध्याय का उद्देश्य विद्यार्थियों को धरातलीय पारिस्थितिक तन्त्र (Terrestial Ecosystem) में ऊर्जा-प्रवाह (Energy Flow) की और जैव-ऊर्जा चक्रों (Bio-energy cycles) की जानकारी देनी है।

2.1 परिचय (Introduction)

जिस प्रकार कारखानों में मशीनों को सुचारू रूप से चलाने के लिए लागातार ऊर्जा की जरूरत होती है, उसी प्रकार किसी भी पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem) के स्थायित्व के लिए ऊर्जा प्रवाह एवं तत्त्व संचरण अति आवश्यक है। इसमें ऊर्जा (Energy) तथा पदार्थों का निवेश विभिन्न माध्यमों से होता रहता है। इतना ही नहीं ऊर्जा का निर्गम भी इसी के साथ सक्रिय रहता है। अधिक मात्रा में प्राप्त ऊर्जा पारिस्थितिक तन्त्र में स्थिरता बनी रहती है। ऊर्जा प्रवाह एवं निर्गमन में समस्थिति की दशा (Equilibrium Stage) आवश्यक है। इस दशा में पारिस्थितिक तन्त्र स्थिर रहता है। इसके विपरीत स्थिति में पर्यावरणीय असन्तुलन उत्पन्न हो जाता

है। ऊर्जा प्रवाह के माध्यम से जैविक-अजैविक तत्त्वों का संचरण होता रहता है। वास्तव में ऊर्जा प्रवाह एक चालक बल (Driving Force) है जिससे तत्त्व संरचरण की क्रिया होती है। P. A. Furley और W. W. Newey (1983) ने स्पष्ट किया कि पारिस्थितिक तन्त्र में जैविक-अजैविक तत्त्वों का वितरण एवं पुनर्वितरण चक्रीय मार्ग से होता है आर चक्रीय मार्गों का चालन ऊर्जा के सतत निवेश द्वारा होता है। जैविक-अजैविक तत्त्व पोषक तत्त्व होते हैं जिससे जीवों का निर्माण एवं संवर्द्धन होता है। वास्तव में जीव मण्डल में ऊर्जा प्रवाह, तत्त्व-संचरण एवं भू-जैव रसायन चक्र की एक ठोस व्यवस्था है जिससे धरातलीय पारिस्थितिक तन्त्र (Terrestial Ecosystem) सन्तुलन की स्थिति में रहता है। आईए हम लोग आगे जाने कि धरातलीय पारिस्थितिक तंत्र (Terrestial Ecosystem) में ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow) किस तरह से होता है ?

2.2 धरातलीय परिस्थितिक तन्त्र जैव-ऊर्जा चक्र (Bio-Energy Cycles in Terrestrial Ecosystem)

भौतिक पदार्थ जो वातारण में मौजूद होते हैं जैविक क्रियाओं द्वारा कार्बनिक रूप में रूपान्तरित होकर पारिस्थितिक तन्त्र के जैविक घटकों का सृजन करते हैं जिनके अपघटन या मृत्यु के पश्चात उनमें संकलित पदार्थ पुनः वातावरण में सम्मिलित हो जाते हैं। इस क्रिया को जैव-ऊर्जा चक्र (Bio-Energy Cycle) या जैव-भूरासायनिक-चक्र की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार अजैविक तत्त्व → जैविक अवस्था → अजैविक अवस्था का एक विस्तृत चक्र जैव-ऊर्जा चक्र / जैव-भूरासायनिक चक्र होता है।

अजैविक रासायनिक तत्त्वों को पौधे अपनी जड़ों द्वारा ग्रहण करते हैं जो जैविक तत्त्वों के रूप में परिवर्तित होकर विभिन्न पोषण स्तरों में विभिन्न जीवों द्वारा ग्रहण किये जाते हैं तथा जीवों के विघटन या मृत होने पर ये तत्त्व पुनः रासायनिक तत्त्वों में परिवर्तित हो जाते हैं, जिससे इनका एक चक्र पूरा होता है। जैव-ऊर्जा चक्र

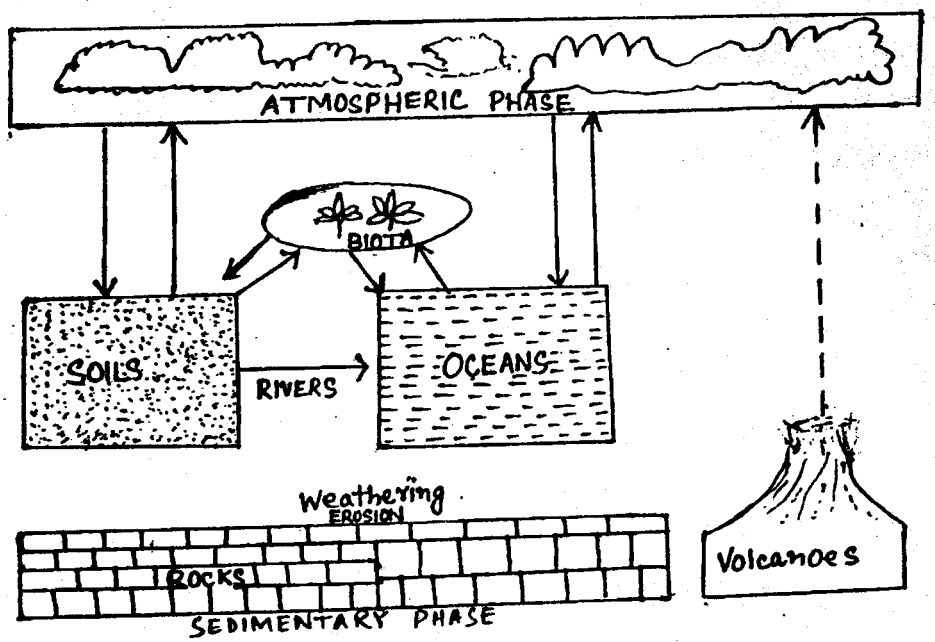

चित्र : 2.1—सामान्य जैव भूरसायन चक्र का प्रदर्शन (D. Botkin & E. A. Keller, 1982, के आधार पर)

या जैव भू-रसायन (Geobiochemical Cycles) की प्रक्रिया की सरल रूप में निम्नलिखित शब्दों में व्याख्या की जा सकती है। इस चक्र की प्रक्रिया के तहत सबसे पहले अवसादी प्रावस्था तथा भण्डार (शैल) तथा वायुमण्डलीय प्रावस्था से रासायनिक पोषक तत्त्व विभिन्न माध्यमों तथा विधियों से मिट्टयों में पहुँचकर संचित होते हैं।

अब पौधे अपनी जड़ों द्वारा मिट्टीयों में स्थिति रासायनिक पोषक तत्त्वों को घोल रूप में ग्रहण करते हैं। पौधों की जड़ों से रासायनिक तत्त्वों को प्राप्त करने की प्रक्रिया को जड़ परासरण (Root Osmosis) कहते हैं। मृदा भण्डार (Soil Pool) में संचित कुछ रासायनिक तत्त्व का अपक्षालन (Leaching) की प्रक्रिया द्वारा नीचे की ओर चला जाता है और इस प्रकार ये अपक्षालित Leached) रासायनिक पदार्थ अवसादी प्रावस्था में पुनः वापस पहुँच जाते हैं। इसी तरह मिट्टयों से कुछ रासायनिक तत्त्वों का वर्षा वाही जल (Surface Runoff) द्वारा अपरदन हो जाता है। इस तरह अपरदित रासायनिक पदार्थ बहकर नदी-नालों से होकर सागरों में पहुँच जाते हैं। (चित्र) पौधों द्वारा मिट्टियों से ग्रहण किये गए रासायनिक पोषक तत्त्वों का पारिस्थितिक तंत्र में आहार श्रृंखला के सहारे ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow) के माध्यम से विभिन्न पोषण स्तरों में परिवहन तथा स्थानान्तरण हो जाता है। आप इसके आगे पढ़ेंगे कि किस प्रकार ऊर्जा का प्रवाह एक पोषण स्तर (Trophic Level) से दूसरे पोषण स्तर तक होता है।

2.2.1 पारिस्थितिक तन्त्र में ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow in the Ecosystem)

पारिस्थितिक तन्त्र में ऊर्जा की प्राप्ति सूर्य से होती है जिसका उपयोग प्राथमिक उत्पादकों (Primary Producer) (हरित पौधों) द्वारा किया जाता है। पारिस्थितिक तन्त्रों में ऊर्जा निवेश तथा उनका निर्गमन होता रहता है जिसमें सन्तुलन अनवरत बना रहता है जिससे पारिस्थितिक तन्त्र भी सुन्तुलित अवस्था में रहते हैं। वास्तव में सौर्थिक ऊर्जा की जितनी मात्रा सूर्य से निकलती है उसका 51 प्रतिशत भाग धरातल पर प्राप्त होता है जिसका 0.1 प्रतिशत भाग हरित पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण (Photo Synthesis) की क्रिया में उपयोग किया जाता है और जिसका अधिकांश भाग ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। केवल कुछ भाग ही आहार ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। केवल कुछ भाग ही आहार ऊर्जा के रूप में प्रयुक्त होता है जिसका संचयन पौधों के विभिन्न अवयवों में होता है। •पारिस्थितिक तन्त्र में प्राथमिक उत्पादक ही सौर्यिक ऊर्जा को सीधे ग्रहण करते हैं। पोषण स्तरों के अन्य उपभोक्ता जीव प्राथमिक उत्पादकों द्वारा परिवर्तित ऊर्जा को प्राप्त करते हैं। परिवर्तित ऊर्जा का प्रवाह विभिन्न पोषण स्तरों में होता है। पोषण स्तरों में परिवर्तित ऊर्जा का प्रवाह पोषण स्तरों में नियंत्रित रहता है जिसका नियंत्रण ऊष्मागतिकी (Thermodynamic) के नियमों द्वारा होता है जिस कारण पारिस्थितिक तन्त्र (Ecosystem) में सन्तुलन की स्थिति विद्यमान रहती है।

पारिस्थितिक तन्त्रों में जीवों में क्रियाशीलता विद्यमान रहती है जिससे ऊर्जा का परिवर्त्तन विभिन्न रूपों में होता रहता है। आहार श्रृखला के विभिन्न पोषण स्तरों (Trophic Levels) में ऊर्जा प्रवाह की एक क्रिया सक्रिय रहती है। सौर्थिक ऊर्जा को हरित पौधे प्रकाश संश्लेषण द्वारा ग्रहण हैं तथा इसे आहार ऊर्जा में परिवर्तित कर लेते हैं। इस आहार ऊर्जा के द्वारा पौधों के ऊतकों (Tissues) का संवर्द्धन एवं पोषण होता है। यही

कारण है कि इस प्राथमिक उत्पादकों को स्वपोषित पादप की संज्ञा दी जाती है। स्वपोषी पादप जितनी ऊर्जा आहार ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं उसका कुछ भाग श्वसन क्रिया द्वारा खर्च हो जाता है। जो ऊर्जा शेष रहती है उसी से इनके ऊतकों का विकास एवं सम्वर्द्धन होता है। इस प्रकार इस पोषण-स्तर में–(i) हरित पौधों द्वारा सूर्य से ऊर्जा को ग्रहण करना, (ii) सौर्यिक ऊर्जा का प्रकाश संश्लेषण विधि से आहार ऊर्जा में परिवर्तित होना तथा (iii) श्वसन क्रिया द्वारा आहार-ऊर्जा का कुछ भाग क्षय होना, तीनों क्रियायें निरन्तर सक्रिय रहती हैं।

प्राथमिक उपभोक्ताओं (Primary Consumer) (द्वितीय पोषण स्तर) (Second Trophic Level) द्वारा प्राथमिक उत्पादकों (Primary Producer) (हरित पौधों) का उपभोग किया जाता है तब उत्पादक स्तर की संचित ऊर्जा का प्रवाह द्वितीयक पोषण-स्तर (Second Trophic Level) में होने लगता है। द्वितीयक पोषण-स्तर के जीव जो ऊर्जा आहार-ऊर्जा के रूप में उत्पादक स्तर से प्राप्त करते हैं उसका अधिकांश भाग इनके विकास एवं संवर्द्धन में खर्च होता है तथा कुछ भाग इनकी श्वसन क्रिया में खत्म हो जाता है। इस प्रकार प्राथमिक उत्पादक स्तर से प्राप्त आहार ऊर्जा का अधिकांश भाग द्वितीय पोषण-स्तर में संचित हो जाता है।

तृतीय पोषण-स्तर (Third Trophic Level) के मांसाहारी जीवों (Carnivores) द्वारा जब द्वितीयक पोषण-स्तर (Second Trophic Level) में संचित ऊर्जा का प्रयोग किया जाता है तो उसका अधिकांश भाग इनके विकास एवं संवर्द्धन में खर्च होता है तथा कुछ भाग श्वसन क्रिया में खत्म / खर्च होता है। इस प्रकार आहार ऊर्जा का संचयन तृतीय पोषण स्तर में हो जाता है। एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण-स्तर, दूसरे से तीसरे पोषण स्तर (Third Trophic Level) अन्तिम पोषण-स्तर तक यह प्रक्रिया चलती रहती है। इसी प्रक्रिया द्वारा सम्पूर्ण आहार शृंखला (Food Chain) में ऊर्जा का प्रवाह निरन्तर संचालित होता रहता है।

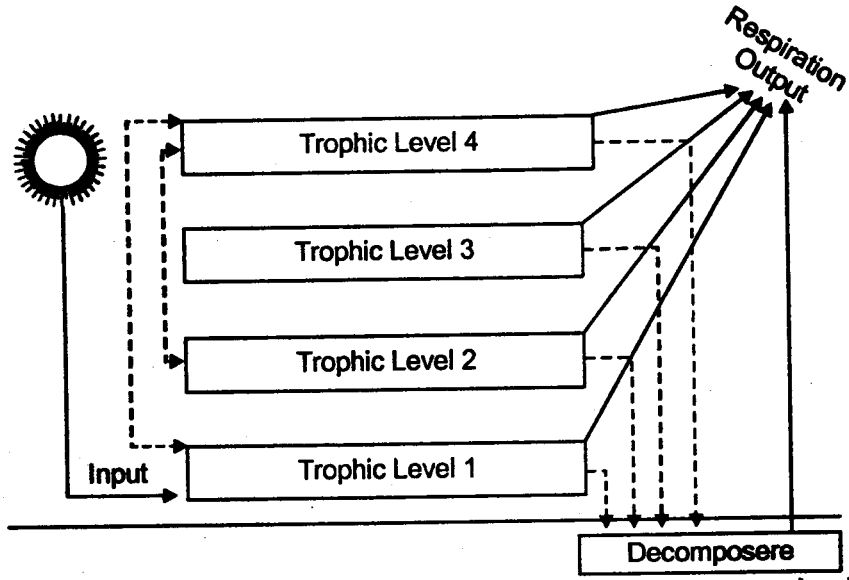

चित्र : 2.2—पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा-प्रवाह का सामान्य प्रतिरूप। ठोस तथा खण्डित रेखायें क्रमशः ऊर्जा-प्रवाह के प्रमुख एवं गौण मार्गों को प्रदर्शित करती हैं। पोषण स्तर 1 = पौधे, प्राथमिक उत्पादक; पोषण स्तर 2 = शाकयक्षी जन्तु, प्राथमिक उपयोक्ता; पोषण स्तर 3 = मांसमक्षी जन्तु, द्वितीयक उपभोक्ता तथा पोषण स्तर 4 = सर्वाहारी। सर्वभक्षी, जन्तु तथा मनुष्य।

(सी० सी० पार्क 1980 के अनुसार)

जीव एवं पौधे जब खत्म हो जाते हैं तब इनमें संचित ऊर्जा नष्ट नहीं होती है, बल्कि इसका स्थानान्तरण वियोजक जीवों (Decomposer Organism) द्वारा जो ऊर्जा (Energy) प्राप्त की जाती है उसका अधिकांश भाग इनके विकास में प्रयुक्त होता है तथा कुछ भाग का श्वसन क्रिया द्वारा वायुमण्डल में गमन होता है। वियोजक जीवों (Decomposer Organism) से ऊर्जा का प्रवाह उत्पादक स्तर में होता है। इस प्रकार ऊर्जा का प्रवाह निरन्तर चलता रहता है।

धरातलीय पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem) में ऊर्जा तथा पोषक तत्त्वों का प्रवाह तथा संचरण एक-दूसरे से इतना अन्तर्सम्बधित होता है तथा अत्यन्त जटिल मार्गों से सम्पन्न होता है कि उनका विश्वस्तर पर साधारणीकरण करना कठिन हो जाता है। साथ-ही-साथ एकाकी तत्त्व के संचरण तथा चक्रन से सम्बन्धित जैव-भुरसायन चक्रों (Bio-geochemical Cycles) का दो स्तरों पर अध्ययन किया जा सकता है–(i) गैसीय चक्र (Gaseous Cycle) : इनमें कार्बन चक्र (Carbon Cycle), Oxygen Cycle, नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen Cycle), हाइड्रोजन चक्र (Hydrogen Cycle) आदि शामिल हैं। (ii) अवसादी चक्र (Sedimentary Cycle) : इनमें ठोस रासायनिक तत्त्व जैसे–गंधक, पोटाशियम, चूना, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम आदि तत्त्व आते हैं। इनके चक्रीय संचरण को ठोस पदार्थ चक्र कहते हैं।

आगे आप लोग जलीय चक्र (Hydrological Cycle) और ऑक्सीजन चक्र (Oxygen Cycle) के बारे में बारी-बारी से जानकारी प्राप्त करेंगे।

2.2.2 जलीय चक्र (Hydrological Cycle)

जैसा कि हम लोग जानते हैं कि 'जल ही जीवन है'–के आधार पर बिना इसके जीवों का जीवन एवं विकास सम्भव नहीं है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जल जीवमण्डल का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जो समय तथा स्थान सापेक्ष विभिन्न रूपों में विद्यमान रहता है। वायुमण्डल में गैस, ध्रुवीय क्षेत्रों या उच्चस्थ स्थानों में हिम, महासागर-सागर-झील-तालाब-नदी, चट्टानों तथा मिट्टियों में तरलास्था में जल पाया जाता है।

जल तीन अवस्थाओं द्रव, ठोस एवं गैस में वायुमण्डल, जलमण्डल तथा स्थलमण्डल में मौजूद हैं जिनमें पारस्परिक आदान-प्रदान की क्रियायें होती रहती हैं। वास्तव में ये तीनों अवस्थाये जल के विभिन्न रूप हैं जिनका जैविक तथा अजैविक संघटकों के लिए अत्यन्त महत्त्व होता है। साथ ही तीनों अवस्थाएँ जलवाही होती हैं जो सदैव उच्चावच प्रवणता के सापेक्ष प्रवाहित होती रहती हैं। अपने प्रवाह-काल में घुलन तथा परिवहन क्रिया करता है जिससे जल में अनेक तत्त्व सम्मिक्षित अवस्था मं विद्यमान रहते हैं।

जल-चक्र (Hydrological Cycle) में महासागरों अथवा सागरों का जल उष्मन के कारण वाष्पित (Evaporated) होता है जिससे मेघों का निर्माण होता है। इससे जल गैसीय अवस्था से ठोस (Solid) अवस्था में पहुँच जाता है। मेघों से वर्षण (Precipitation) की क्रिया प्रारम्भ होती है जिससे पुनः जल तरलावस्था (स्पुनपक) में पहुँच जाता है। वर्षण की प्रक्रिया से पुनः जल स्थलीय भाग से नदियों के माध्यम सागर में पहुँचता है। यद्यपि इसका कुछ भाग अन्तः प्रवाही जल के रूप में प्रवाहित होकर सागर में पहुँचता है। कुछ भाग वनस्पतियों तथा मृदा द्वारा अवशोषित होता है जो वाष्पीकरण (Evaporation) तथा मेघ के रूप में परिवर्तित होकार पुनः सागर में पहुँचता है।

स्पष्ट है कि एक जलीय चक्र की प्रक्रिया सक्रिय रहती है जिसमें सागर जल का वाष्पीकरण, वायुमण्डल में पहुँचना, वायुमण्डलीय आर्द्रता का संघनन (Condensation) या मेघों का निर्माण, वर्षण होना (Precipitation) और नदियों के माध्यम से सागर में पुनः पहुँचना आदि क्रियायें शामिल हैं जिनसे एक जलीय चक्र की पूर्ति होती है।

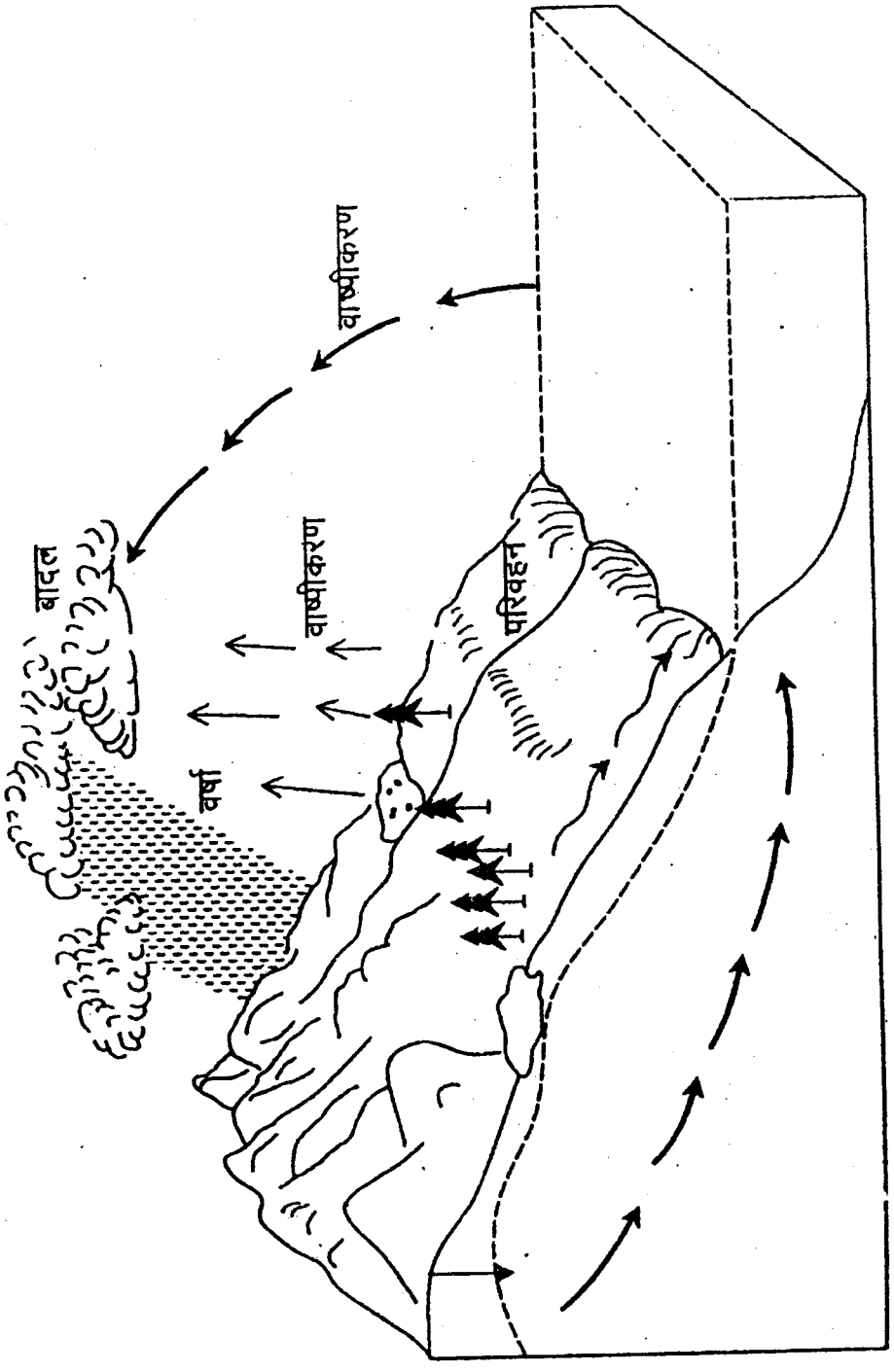

चित्र : 2.3—जल चक्र

जल चक्र जीवमण्डल के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके द्वारा जैविक एवं अजैविक संघटकों को केवल जल की ही प्राप्ति नहीं होती, अपितु इससे इनको विभिन्न प्रकार के तत्त्वों की भी प्राप्ति होती है।

2.2.3 ऑक्सीजन चक्र (Oxygen Cycle)

जीवमण्डलीय पारिस्थितिक तंत्र में ऑक्सीजन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है तथा यह जीवित जीवों के लिए एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, क्योंकि यह समस्त जीवों के जीवन को सम्भव बनाती है तथा उससे उत्पन्न भी होती है। ऑक्सीजन जीवमण्डल में अन्य तत्त्वों के संचरण तथा गमन में सहायक भी होती है। रासायनिक दृष्टि से ऑक्सीजन अत्यधिक सक्रिय होती है, क्योंकि यह जीवमण्डल में स्थित अधिकांश तत्त्वों के साथ संयुक्त हो जाती है। जीवित जीवों के समस्त अणुओं के 70 प्रतिशत भाग का निर्माण ऑक्सीजन द्वारा ही होता है तथा यह कार्बोहाइड्रेट के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पौधों तथा जन्तुओं की श्वसन प्रक्रिया के लिए प्रयोग करते हैं। पौधों द्वारा प्रकाशसंश्लेषण की प्रक्रिया के दौरान ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। ऑक्सीजन प्रोटीन और चर्बी के निर्माण में भी सहायता करती है। जीवमण्डल में ऑक्सीजन चक्र अत्यन्त जटिल होता है, क्योंकि ऑक्सीजन के रासायनिक रूप कई तरह के होते हैं, जैसे–आणविक ऑक्सीजन (Molecular Oxygen, O_2) जल (H_2O), कार्बन-डाइ ऑक्साइड (Co_2), विभिन्न अकार्बनिक योगिक जैसे–आक्साइड्स (Oxides-Fe_2O_3), कैल्सियम कार्बोनेट्स (Calcium Carbonate $CaCO_3$), Magnesium Carbonate Mg CO_3 आदि)। अर्थात् ऑक्सीजन कई रासायनिक रूपों में मौजूद होती है।

ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि वायुमण्डल के विकास के प्रारम्भिक चरण में मुक्त ऑक्सीजन या आणविक ऑक्सीजन नहीं थी। ऑक्सीजन का उद्भव सम्भवतः प्रकाशसंश्लेषी हरे पौधों के उद्भव के बाद हुआ होगा। सम्भवतः प्रथम आणविक ऑक्सीजन का उद्भव पौधों की कोशिकाओं (Plant Cells) द्वारा जलीय अणुओं (Water Molecules) के विखण्डन या विभाजन (Splitting) के कारण हुआ होगा। ज्ञातव्य है कि जलीय अणुओं का पौधों की कोशिकाओं द्वारा विखण्डन या अलगाव होता है तथा ये अलग किये गए जल के अणु लगभग 2 मिलियन वर्षों में आपस में पुनः मिल जाते हैं। इस तरह पौधों द्वारा उत्पन्न ऑक्सीजन का वायुमण्डल में विभिन्न मार्गों से संचरण होता है तथा ऑक्सीजन का लगभग 2000 वर्षों बाद पुनः चक्रन (Recycling) होता है। स्पष्ट है कि ऑक्सीजन का वायुमण्डल में निवास समय (Residence Time 2000 वर्ष) है। अर्थात् ऑक्सीजन का एक बार संचरण हो जाने के बाद उसका दुबारा संचरण तथा चक्रन लगभग 2000 वर्षों बाद सम्पन्न होता है। अपने निर्माण काल से लेकर वर्तमान समय तक ऑक्सीजन का वायुमण्डल में लगातार सान्द्रण होता रहा है। परिणामस्वरूप वर्तमान समय में ऑक्सीजन वायुमण्डल के समस्त गैसीय संघटन के लगभग 21 प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करती है। जैसा कि आप लोगों को मालूम है कि ऑक्सीजन आणविक ऑक्सीजन (O_2) के रूप में अल्प काल तक ही रहती है, क्योंकि यह CO_2 (कार्बन-डाइ आक्साइड) या H_2O (जल) या अन्य आक्साइडों से शीघ्र जुट जाती है। (चित्र 2.4)।

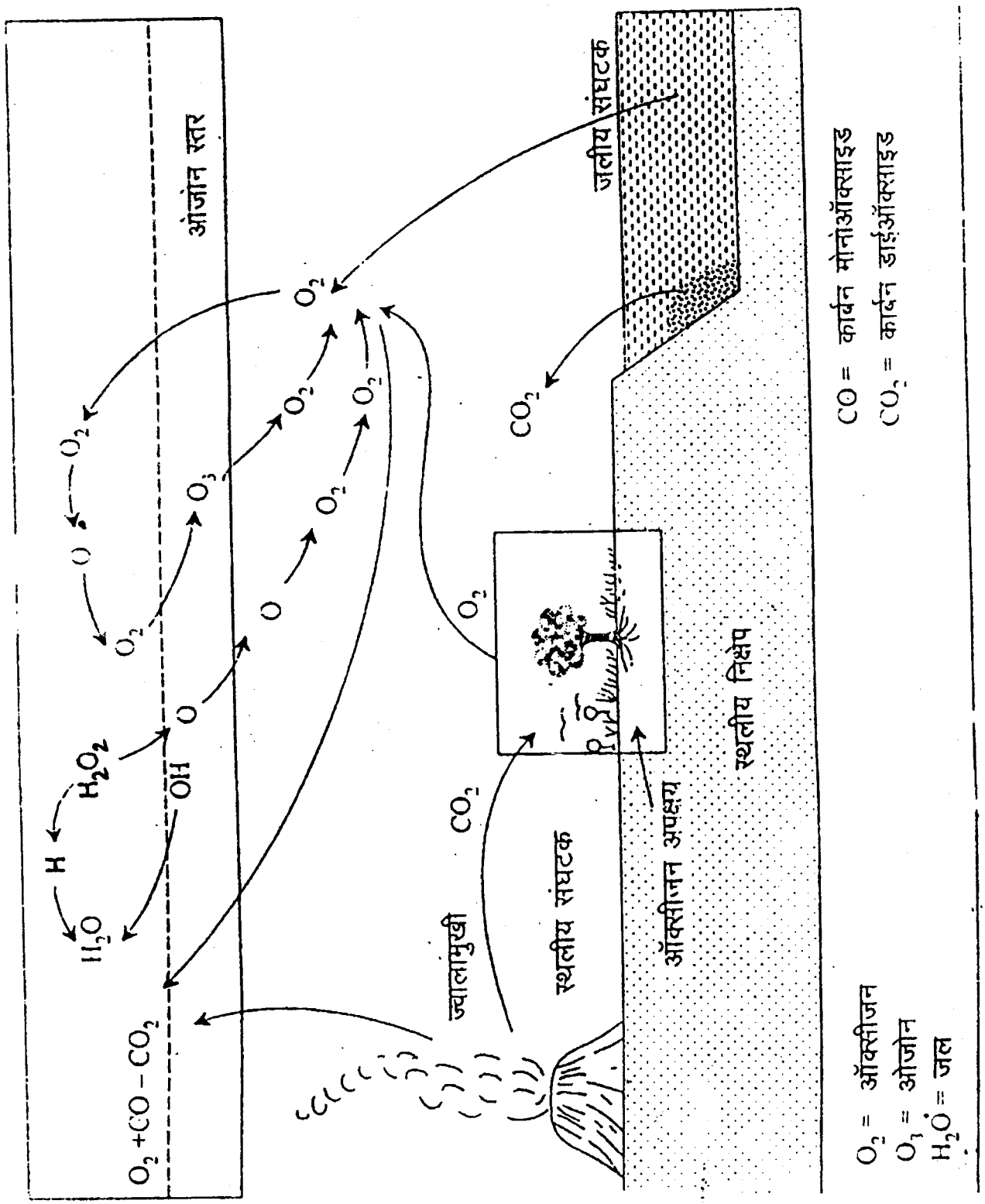

चित्र : 2.4—ऑक्सीजन चक्र

ऑक्सीजन का निर्माण स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र के स्वपोषित हरे पौधे तथा सागरीय पारिस्थितिक तंत्र के पादप प्लैंकटन (फाइटोप्लैंकटन) द्वारा प्रकाशसंश्लेषण (Photosynthesis) की प्रक्रिया द्वारा होता है। कुछ ऑक्सीजन का निर्माण निभिन्न खनिज ऑक्साइडों के न्यूनीकरण (Reduction) द्वारा भी होता है। इस तरह उत्पन्न ऑक्सीजन का वायुमण्डल में भण्डारन होता है। इसे वायुमण्डलीय ऑक्सीजन भण्डार कहते हैं। ज्वालामुखी उद्‌भेदन के समय गैस निष्कासन (Outgassing) खासकर गैसों के CO_2 तथा H_2O (जल) के रूप में निष्कासन द्वारा भी कुछ ऑक्सीजन वायुमण्डल में पहुँच कर वायुमण्डलीय ऑक्सीजन भण्डार में प्रति वर्ष शामिल होती रहती है। इस वायुमण्डलीय ऑक्सीजन भण्डार से ऑक्सीजन को प्राप्त करके सागरीय तथा स्थलीय जन्तु उसका उपभोग करते हैं। लकड़ियों तथा जीवाश्म ईंधनों के जलने में भी ऑक्सीजन का उपभोग होता है। ऑक्सीजन का कुछ भाग जल में समाहित हो जाता है तथा नदियों से होकर यह ऑक्सीजन सागरों तक पहुँचती है एवं वहाँ पर सागरीय अवसादों में समाहित हो जाती है। ऑक्सीजन के इस भण्डार को अवसादी ऑक्सीजन भण्डार कहा जाता है। इस अवसादी भण्डार में ऑक्सीजन का निवास समय (Residence Time) अत्यधिक लम्बा होता है और इस तरह ऑक्सीजन का चक्रण (Cycling) चलता रहता है।

2.3 सारांश (Summing up)

जिस प्रकार कारखानों में मशीनों को सुचारू रूप से चलाने के लिए लागातार ऊर्जा की जरूरत होती है, उसी प्रकार किसी भी पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem) को भी चलाने के लिए ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow) एवं तत्त्व संचरण बहुत जरूरी है। P. A. Furley और W. W. Newey (1983) ने स्पष्ट किया कि पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem) में जैविक-अजैविक तत्त्वों का वितरण एवं पुनर्वितरण चक्रीय मार्ग से होता है और चक्रीय मार्गो का चालन ऊर्जा के सतत् निवेश द्वारा होता है। जैविक-अजैविक तत्त्व पोषक तत्त्व होते हैं जिससे जीवों का निर्माण एवं संवर्द्धन होता है। वास्तव में जीवमण्डल में ऊर्जा प्रवाह, तत्त्व संचरण एवं भू-जैव रसायन चक्र की एक ठोस व्यवस्था है जिससे धरातलीय पारिस्थितिक तन्त्र (Terrestial Ecosystem) सन्तुलन की स्थिति में रहता है।

भौतिक पदार्थ जो वातावरण में मौजूद होते हैं जैविक क्रियाओं द्वारा कार्बनिक रूप में रूपान्तरित होकर पारिस्थितिक तंत्र के जैविक घटकों का सृजन करते हैं जिनके अपघटन या मृत्यु के बाद उनमें संकलित पदार्थ पुनः वातावरण में सम्मिलित हो जाते हैं। इस क्रिया को 'जैव-ऊर्जा चक्र' (Bio-energy Cycle) या 'जैव-भूरासायनिक-चक्र' की संज्ञा दी जाती है।

इस प्रकार, अजैविक तत्त्व → जैविक अवस्था → अजैविक अवस्था का एक विस्तृत चक्र जैव-ऊर्जा-चक्र। जैव-भूरासायनिक चक्र होता है।

पारिस्थितिक तन्त्र में ऊर्जा की प्राप्ति सूर्य से होती है जिसका उपयोग प्राथमिक उत्पादकों (Primary Producer) द्वारा किया जाता है। पोषण स्तरों के अन्य उपभोक्ता जीव प्राथमिक उत्पादकों द्वारा परिवर्तित ऊर्जा को प्राप्त करते हैं। पोषण स्तरों में परिवर्तित ऊर्जा का पोषण स्तरों में नियंत्रित रहता है जिसका नियंत्रण ऊष्मागतिकी (Thermodynamic) के नियमों द्वारा होता है जिस कारण पारिस्थितिक तंत्र में संतुलन की स्थिति विद्यमान रहती है।